कुरुक्षेत्र

गांवों में बैंक सेवाएं

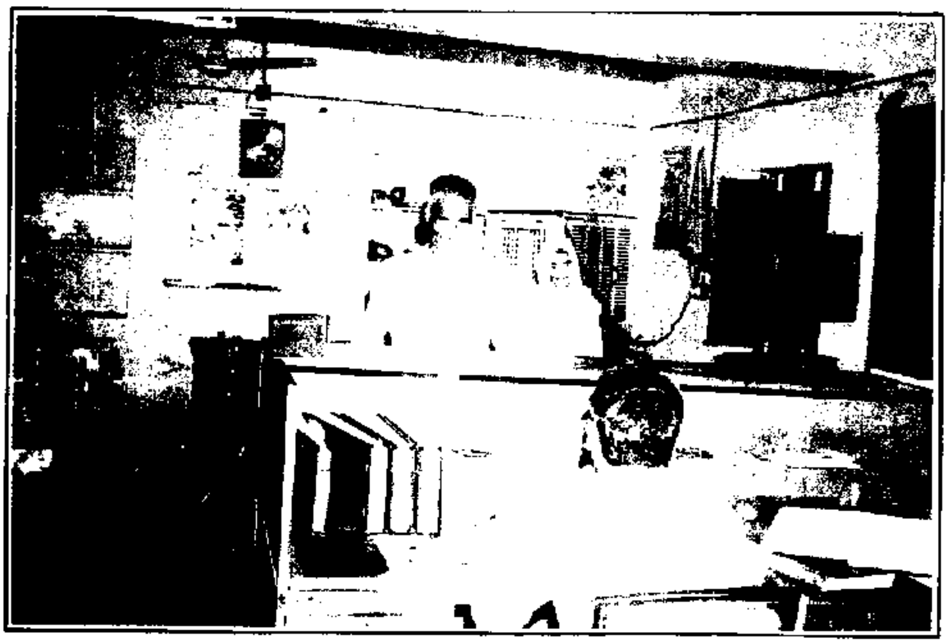

गांवों में गरीबी दूर करने और ग्रामीण विकास के कार्यक्रम तभी सफल हो सकते हैं जब वित्तीय संस्थानों से लोगों को आसानी से ऋण मिलते रहें। इन संस्थानों में व्यापारिक और सहकारी बैंक शामिल हैं।

वर्ष—35, अंक 9, आषाढ़-श्रावण, शक-1912

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

एक प्रति : 2.00 रु.
वार्षिक चंदा : 20 रु.

सामाजिक न्याय व उत्पादन में वृद्धि 2
उपेन्द्र नाथ वर्मा
सामाजिक बैंकिंग और लाभप्रदता 4
डा. प्रभु दयाल यादव
अनुरोध (कविता) 9
रमेशचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
ग्रामीण विकास में वाणिज्यिक बैंकों का योगदान 10
राजकुमार गुप्ता
सामाजिक परिवर्तन और बैंकों की भूमिका 13
डा. विनोद गुप्ता
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक योजना 16
म. ना. भारती
बैंक राष्ट्रीयकरण के दो दशक-समीक्षा 19
अशोक नागर
कालजयी डा. आम्बेडकर 21
देवेन्द्र कुमार बैसन्तरी
नए रास्ते (कहानी) 24
हरि विश्नोई
ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग की सुविधाएं 28
मनोहर पुरी
धन्यवाद की जगह...(कविता) 31
ऋषि मोहन श्रीवास्तव
देहात विकास के लिये ऋण व्यवस्था का स्वरूप 32
विनोद अग्रवाल
टोंक जिले के ग्रामीण साख में बैंकों का योगदान 35
ए. के. सलोदिया
पंचायती राज तथा उसका प्रशासकीय ढांचा 38
डा.(श्रीमती)वीणा मेहता
महिला कानून शृंखला 44
उषा वर्मा
ग्रामीण विकास और बैंक 45
डा. ओ. पी. गुप्ता
छतरपुर जिले में भूमि विकास बैंक की उपलब्धियां 48
शोभा मिश्रा
ग्राम बटोधा में विकास की झलक 51
यू. सी. मारकवाड़े
श्रमिक किसान (कविता) 56
मोहन चन्द्र मन्दन

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

सामाजिक न्याय व उत्पादन में वृद्धि

भारत कृषि प्रधान देश है। यहां 100 में 67.1 आदमी खेती पर निर्भर हैं। अमरीका में 2.5 प्रतिशत आदमी खेती पर निर्भर हैं और रूस में 14 प्रतिशत आदमी खेती पर निर्भर हैं। यह चिन्ता का विषय है कि कृषि प्रधान देश होते हुए भी हमारा देश आज भी दलहन, तिलहन और चीनी के मामले में परमुखापेक्षी है। इसलिए सरकार ने फैसला किया है कि जिन चीजों की कमी है, हम अगले पांच वर्षों में कोशिश करेंगे कि उन चीजों में हम आत्म-निर्भर बन जाएं। हम परमुखापेक्षी नहीं रहें।

उपलब्धियां

देश की सम्पूर्ण उपज के क्षेत्र में, उत्पादन के क्षेत्र में जो बढ़ोतरी हुई, उसे हम और आगे ले जाएंगे, पीछे नहीं हटने देंगे। आजादी के बाद, आरम्भ के दिनों में इस देश में खाद्यान्न की उपज 5 करोड़ 50 लाख टन थी जबकि गत वर्ष यानी 1989-90 में हमारा उत्पादन 17 करोड़ 30 लाख टन तक पहुंच गया। यह उपलब्धि कोई मामूली उपलब्धि नहीं है।

नया रोजगार गारंटी कार्यक्रम

हम तो ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम पर विचार कर रहे हैं और उसको हम 1990-91 में लागू कर देंगे, लेकिन इसे पूरे देश में एक साथ चालू नहीं किया जा सकता है। उसके लिए बहुत पैसा चाहिए। चुनी हुई जगहों में, जहां बेरोजगारी की समस्या भयावह है, और सूखाग्रस्त इलाका है, राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके हम चुनी हुई जगह पर इस योजना को चलाना चाहते हैं।

जवाहर रोजगार योजना में परिवर्तन

जवाहर रोजगार योजना में 85 प्रतिशत रुपया खर्च हो गया और 93 प्रतिशत की उपलब्धि हुई है। अभी विभिन्न राज्यों से मार्च की रिपोर्ट आनी बाकी है। इसमें दस प्रतिशत श्रम दिन की बढ़ोतरी हुई। जहां तक जवाहर रोजगार योजना का सवाल है, पहले रुपया सीधे जिलों को दिया जाता था अब हम राज्य सरकार के माध्यम से भेजते हैं। हम राज्य सरकारों की उपेक्षा करके नहीं चल सकते हैं। दूसरी बात जवाहर रोजगार योजना में यह थी कि पचास मजदूरी पर और पचास मैटीरियल पर खर्च करते थे, हमने इसमें थोड़ा-सा बदलाव किया है। हमने साठ मजदूरी पर कर दिया और चालीस मैटीरियल पर कर दिया है। बस यही फर्क है। मैं यह कहना चाहता हूं कि उसको हम बढ़ायेंगे। हमारा जिस-जिस ओर कदम बढ़ा है उस ओर हम कदम बढ़ायेंगे और उससे अभी आगे बढ़ना चाहते हैं।

पेयजल समस्या का समाधान दो वर्ष में ही हो जाएगा

पेयजल की समस्या भी बहुत कठिन है। करीब सात हजार या छः हजार से अधिक इस देश में ऐसे गांव हैं, जो प्राब्लम विलेज माने जाते हैं। जहां पानी का स्रोत नहीं है, न जमीन के अन्दर और न एक किलोमीटर के अन्दर हैं। ऐसे गांव समस्याग्रस्त हैं, उनकी समस्या को भी हम दो वर्ष में खत्म कर देना चाहते हैं।

हम चाहते हैं कि हर गांव में आंशिक रूप से ही सही, पानी पहुंच जाए। यह हमारा लक्ष्य है। जहां तक ड्रिंकिंग वाटर प्राब्लम का सवाल है, उसमें हम बहुत तेजी से काम कर रहे हैं। खेती के लिये पानी जरूरी है और जब पानी नहीं है तो कुछ नहीं हो सकता है। हमारे 100 में से 70 किसानों की जमीन पर आज भी सिंचाई की व्यवस्था नहीं है। उन्हें आसमान के भरोसे खेती करनी पड़ती है। इस विज्ञान के जमाने में जब इंसान चांद पर जा रहे हैं और इसमें एक-से-एक चमत्कारी काम हो रहे हैं तो ऐसे में हमारी जमीन प्यास से तड़प रही है, हमारे इंसान प्यास से तड़प रहे हैं। हम पिछले 40-42 सालों में लोगों को पीने का पानी नहीं दे सके हैं। इसमें हम सब को मिलकर सोचने की

* 14 मई 1990 को ग्रामीण विकास राज्य मंत्री श्री उपेन्द्र नाथ वर्मा द्वारा लोक सभा में दिये गये वक्तव्य के प्रमुख अंश।

जरूरत है कि आखिर क्या वजह है कि हम यह क्यों नहीं दे सके हैं? तब जाकर कुछ काम होगा।

पीने के पानी के बारे में तो भयंकर रूप से विषमता है। इसी दिल्ली में जहां प्रति व्यक्ति प्रति दिन 240 लीटर पानी मिलता है और वहीं गांव में कहीं-कहीं तो दस-पन्द्रह लीटर पानी भी प्रति दिन नहीं मिलता है। हम इस विषमता को कम करने का प्रयास कर रहे हैं।

भूमि सुधार

जमीन के मालिक वे हैं जो हल को छूना भी पाप समझते हैं। लैंड टू द टिलर का नारा पण्डित जवाहर लाल नेहरू के जमाने से चला आ रहा है। लेकिन उसमें कहां तक सफलता मिली है, पूरा ब्यौरेवार नहीं कहा जा सकता, मगर इतना स्पष्ट है कि उसमें सफलता नहीं मिली है। जो लैंड टू टिलर्स स्लोगन है वह सही है। जिसके हाथ में किताब है और किताब पढ़ना नहीं जानता वह क्या करेगा? यह बिल्कुल सही है कि जिसके बाजू में खेती करने की ताकत है यदि देश की सारी जमीन उसे सौंप दी जाये तो पैदावार कई गुना बढ़ सकती है। लेकिन अभी इसके लिए कुछ करना होगा। यह बिल्कुल साफ है कि केवल उत्पादन बढ़ाना ही नहीं सामाजिक न्याय भी साथ देना है।

किसानों को उपज का सही मूल्य मिले

हमारे किसान के उत्पादन के रास्ते में कई बाधाएं हैं जहां तक खेती की उपज का मामला है, यह सही है कि किसान को उपज का सही मूल्य नहीं मिल पाता, कभी-कभी खर्चा भी नहीं निकल पाता है। नतीजा यह है कि आज लागत खर्च भी नहीं मिल पाती और किसान बेचारा मारा जाता है। सरकार ने इसकी ओर ध्यान दिया और कहा कि किसानों को इतना पैसा तो उसकी उपज का मिलना ही चाहिए ताकि उसे कोई घाटा नहीं हो।

जब उपज का समय आता है, भाव नीचे चला जाता है, जब किसान के हाथ से गल्ला निकल जाता है, भाव उठ जाता है। इस तरह से किसानों पर जो मार पड़ती है वह भयावह है। इस दिशा में हमारी सरकार ने जो कदम बढ़ाया है कि कम से कम कुछ चीजों का दाम बढ़ाइए जिससे किसानों को लाभ होगा और वह ज्यादा उपज कर सकेंगे। हमारे किसान के उत्पादन के रास्ते में बड़ी बाधाएं हैं।

कृषि समर्थन मूल्य

सरकार ने साप सपोर्ट प्राइस कई चीजों के तय कर दिये हैं। जहां भाव नीचे जाने लगेगा वहां सरकार पहुंच जायेगी खरीदने के लिये ताकि किसानों को घाटा न हो। इसका शत-प्रतिशत खर्चा भारत सरकार वहन करेगी। एक और काम जिसको हमने किया है वह है इंटरवेंशन इन मार्किट, जैसे—आलू, प्याज और अंगूर का किया है। इन फसलों के भाव बहुत नीचे चले आते हैं। उसमें जो खर्चा होगा और जो घाटा होगा उसमें सैंकड़े में 50 भारत सरकार देगी और सैंकड़े में 50 राज्य सरकार देगी।

फसल बीमा

सरकार ने यह फैसला किया है कि वह फसल बीमा करेगी। यह फैसला पहले से ही हुआ है। फसल बीमा में बीमा से जितना पैसा आया है उससे कई गुना ज्यादा भुगतान हम कर चुके हैं और वह हम आगे भी करते रहेंगे। उसमें कमी नहीं आने देंगे। फसल बीमा के संबंध में जो ऋणी है, जिन्होंने कर्जा लिया है, अभी हमारी योजना उन्हीं की फसल का बीमा करने की है। □

सामाजिक बैंकिंग और लाभप्रदता

डॉ. प्रभु दयाल यादव

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही सरकार देश में समाजवादी समाज की स्थापना का प्रयास करती रही है तथा इसी को मद्देनजर रखते हुए विभिन्न योजनाओं में लक्ष्य एवं प्राथमिकताएं निर्धारित की गईं। सातवें दशक के प्रारम्भ तक यह महसूस किया जाने लगा था कि कृषि जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों की आवश्यकताओं की उपेक्षा के साथ-साथ बैंकों का ऋण प्रवाह समाज के एक सीमित वर्ग तक ही अत्यधिक केन्द्रित था। स्वतंत्रता प्राप्ति के दो दशकों से अधिक समय के बाद भी बैंकिंग प्रगति अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं और बदलते हुए सामाजिक परिवेश के अनुरूप नहीं थी। वाणिज्यिक बैंक शहरों में स्थित थे, उनका उद्देश्य लाभ कमाना था और आम तौर पर उनका समाज की आवश्यकताओं से कोई लेना-देना न था। बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋण शहरों तक ही सीमित थे तथा अधिकतर संगठित औद्योगिक व व्यापारिक क्षेत्र को ही दिए जाते थे। अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिए गैर संस्थागत एजेंसियों पर निर्भर थे। बैंकिंग सुविधाएं ग्रामीण क्षेत्रों के लिए नाममात्र की ही थी और समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को उपलब्ध नहीं थी।

अतः बैंकिंग प्रणाली को आर्थिक विकास का एक सशक्त माध्यम बनाने के लिए उसे नई दिशा प्रदान करने की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव की गई। अतः ऋण के वितरण के संबंध में मार्गदर्शी सिद्धान्त जारी करने के लिए बैंकिंग उद्योग पर 1967 में 'सामाजिक नियंत्रण' की नीति लागू की गई। इसी प्रक्रिया में, व्यापारिक बैंकों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग तथा साख सुविधाओं का विस्तार करने के लिए 14 निजी व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। अनेक सामाजिक उद्देश्यों के साथ-साथ बैंकों के राष्ट्रीयकरण के निम्न उद्देश्य थे:—

1. बैंकों पर कुछेक व्यक्तियों के नियंत्रण को समाप्त करना।
2. लोगों में बैंकिंग की आदत डालना।
3. बैंकिंग सेवाओं के क्षेत्रीय असंतुलन को कम करना तथा संतुलित विकास करना।
4. ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाएं खोलना जहां पहले से कोई बैंक शाखा न हो।
5. बैंकिंग को व्यवसाय/उत्पादन उन्मुखी बनाना।
6. अर्थव्यवस्था के उपेक्षित क्षेत्रों को पर्याप्त ऋण उपलब्ध करवाना।

राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंकिंग का अद्भुत और अद्वितीय विकास हुआ। 'वर्ग बैंकिंग' का स्थान 'जन बैंकिंग' ने ले लिया और अर्थव्यवस्था के गैर परम्परागत क्षेत्रों को ऋण देने में तेजी से परिवर्तन हुए। शाखाओं का विस्तार बड़ी तेजी से हुआ। 1979 में राष्ट्रीयकरण के समय बैंकों की ग्रामीण शाखाओं की संख्या 1860 (कुल के 22.5 प्रतिशत) थी जो बढ़कर जून 1989 में 32577 (57 प्रतिशत) हो गई। राष्ट्रीयकरण के पश्चात ग्रामीण शाखाओं के विस्तार पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया। जून 1989 के अन्त में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का ऋण जमा अनुपात बढ़कर 60.1 प्रतिशत हो गया। सम्पूर्ण बैंकिंग उद्योग का दिसम्बर 1988 के अन्त में ग्रामीण शाखाओं का ऋण जमा अनुपात 64.3 प्रतिशत हो गया था जो कि 60 प्रतिशत के निर्धारित लक्ष्य को भी पार कर गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित हुआ है तथा उपेक्षित क्षेत्रों—कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्रों की ओर बैंकों का ध्यान केन्द्रीभूत हुआ जिससे देश के सामाजिक-आर्थिक विकास ने गति पकड़ी है।

बैंकिंग उद्योग में परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही तरह के संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं जैसे कि शाखाओं का विशेषतः ग्रामीण तथा अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में भारी विस्तार, वित्तीय बचतों का पर्याप्त संग्रहण तथा समाज के अधिसंख्य कमजोर वर्गों को प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र की श्रेणी में रखा जाना।

भारत सरकार तथा भारतीय रिजर्व बैंक ने समय-समय पर नीति संबंधी मार्गदर्शी सिद्धान्त जारी किए तथा कृषि, लघु उद्योग एवं व्यवसाय, छोटे परिवहन चालक, खुदरा व्यापारी, ग्रामीण दस्तकार, कुटीर एवं ग्रामोद्योग आदि को प्राथमिक क्षेत्र घोषित कर इनको पर्याप्त ऋण उपलब्ध कराने के बैंकों को

आवश्यक निर्देश दिए। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, अग्रणी बैंक योजना, 20 सूत्री कार्यक्रम, शिक्षित बेरोजगार युवाओं को स्वरोजगार (सीयू), शहरी गरीबों को स्वरोजगार योजना (सेपप) इत्यादि योजनाएं आरम्भ की। इस प्रकार सामान्यत: प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को उपलब्ध कराये जाने वाले अग्रिमों को 'सामाजिक बैंकिंग' की परिधि वाले अग्रिम समझे जाते हैं। सरकार द्वारा निर्धारित ये प्राथमिकताएं समाजवादी ढांचे पर आधारित हैं। 'सामाजिक बैंकिंग' अर्थात् प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के अग्रिमों की श्रेणी में आने वाले विभिन्न क्षेत्र एवं इनको उपलब्ध कराया गया अग्रिम सारणी 1, 2, 3 में दर्शाया गया है।

प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के बकाया ऋण कुल ऋणों के 40 प्रतिशत से कम नहीं होने चाहिए जिसमें से प्रत्यक्ष कृषि के अन्तर्गत बकाया ऋण कुल बकाया ऋणों का कम से कम 18 प्रतिशत होना चाहिए। विभेदात्मक ब्याज दर योजना के अन्तर्गत बकाया ऋण गतवर्ष के कुल ऋणों के कम से कम 1 प्रतिशत होने चाहिए तथा इस 1 प्रतिशत का कम से कम 40 प्रतिशत भाग अनुसूचित जाति/जनजाति के ऋणकर्ताओं को दिया जाना चाहिए। विभेदात्मक ब्याज दर योजना के अन्तर्गत दिए जाने वाले ऋणों में से कम से कम 2/3 ऋण ग्रामीण/अर्द्ध शहरी शाखाओं द्वारा दिया जाना चाहिए। समाज के कमजोर वर्गों को कुल बैंक ऋणों का कम से कम 10 प्रतिशत या प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के ऋणों का कम से कम 25 प्रतिशत उपलब्ध कराया जाना चाहिए। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत चुने गये लाभार्थियों में से कम से कम 30 प्रतिशत लाभार्थी अनुसूचित जाति/जनजाति के होने चाहिए। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत वितरित ऋण और अनुदान के रूप में निवेशित संसाधनों के कम से कम 30 प्रतिशत अनुसूचित जाति/जनजाति को मिलने चाहिए।

वर्ष 1988-89 के दौरान, प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र से संबंधित अग्रिमों के लिए निर्धारित लक्ष्यों एवं उपलक्ष्यों को पाने में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक काफी आगे रहे हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों से संबंधित अग्रिमों का अनुपात जून 1989 के अन्त में शुद्ध बैंक ऋण का 44.6 प्रतिशत था जो कि 40 प्रतिशत के निर्धारित लक्ष्य से अधिक था। इसी प्रकार कमजोर वर्गों से संबंधित सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के अग्रिमों का हिस्सा जून 1989 के अन्त में 10 प्रतिशत के लक्ष्य की बजाय उनके कुल बकाया अग्रिमों का 11.1 प्रतिशत था। बैंकों ने न केवल कृषि के लिए प्रत्यक्ष अग्रिमों के लक्ष्य को प्राप्त किया बल्कि वे 17 प्रतिशत के लक्ष्य तक पहुंच गये जहां तक उन्हें मार्च 1989 तक पहुंचना था।

जून 1989 के अन्त तक सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने 20 सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत 229.34 लाख उधार खातों में 11270.18 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता प्रदान की जो कि प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र से संबंधित उनके कुल अग्रिमों का 32.3 प्रतिशत अथवा शुद्ध बैंक ऋण का 14.4 प्रतिशत था।

रोजगार प्रदान करने तथा गरीबी हटाने की योजनाओं में बैंकों का पर्याप्त योगदान रहा है। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 1988-89 के दौरान 37.72 लाख लाभार्थियों को सहायता प्रदान की गई जिसमें 17.5 लाख लाभार्थी (46.4 प्रतिशत) अनुसूचित जाति/जनजातियों के थे तथा 5.95 लाख लाभार्थी (23.2 प्रतिशत) महिला लाभार्थी थीं। यद्यपि अनुसूचित जातियों/जनजातियों के संबंध में सहायता प्राप्त लाभार्थी के 30 प्रतिशत के उप लक्ष्य को प्राप्त कर लिया, लेकिन महिलाओं के उप-लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये। वर्ष 1988-89 के दौरान शिक्षित बेरोजगार युवाओं के लिए स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत 1.88 लाख लाभार्थियों को कुल 394.78 करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया गया जबकि पिछले वित्तीय वर्ष में 1.20 लाख लाभार्थियों को 259.76 करोड़ रुपये का ऋण प्रदान किया गया था। शहरी गरीबों के लिए स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत वर्ष 1988-89 के दौरान 3.41 लाख लाभार्थियों को कुल 130.69 करोड़ रुपये के ऋण स्वीकृत किए गए थे जबकि पिछले वर्ष 3.82 लाख लाभार्थियों को 136.55 करोड़ रुपये के ऋण स्वीकृत किए गए।

उपरोक्त तथ्यों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में राष्ट्रीयकरण के बाद की अवधि में अभूतपूर्व विकास एवं कार्यगत विविधता के अलावा पूर्णत: पुनर्विन्यास की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इस अवधि में वह "बैंकिंग" से "जन-बैंकिंग", "सम्पत्ति पर आधारित उधार" से "उत्पादनोन्मुख उधार" तथा "विशिष्ट जन-बैंकिंग" से "सामाजिक बैंकिंग" के रूप में परिवर्तित होती चली गई।

वाणिज्यिक बैंक की लाभप्रदता

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के लाभप्रदता के संबंध में (प्रकाशित लाभ एवं कार्यशील कोषों के अनुपात) में राष्ट्रीयकरण के पश्चात 1984 तक निरन्तर कम होने की प्रवृति रही है। 1984 में लाभप्रदता में तेजी में गिरवाट आई तथा शुद्ध लाभ भी कम हुआ। लेकिन 1985 से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का लाभ एवं लाभप्रदता दोनों में सार्थक सुधार हुआ तथा 1984 में 0.09 प्रतिशत से 1985 में 0.11 प्रतिशत,

सारणी–1

सामाजिक बैंकिंग अर्थात् प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र

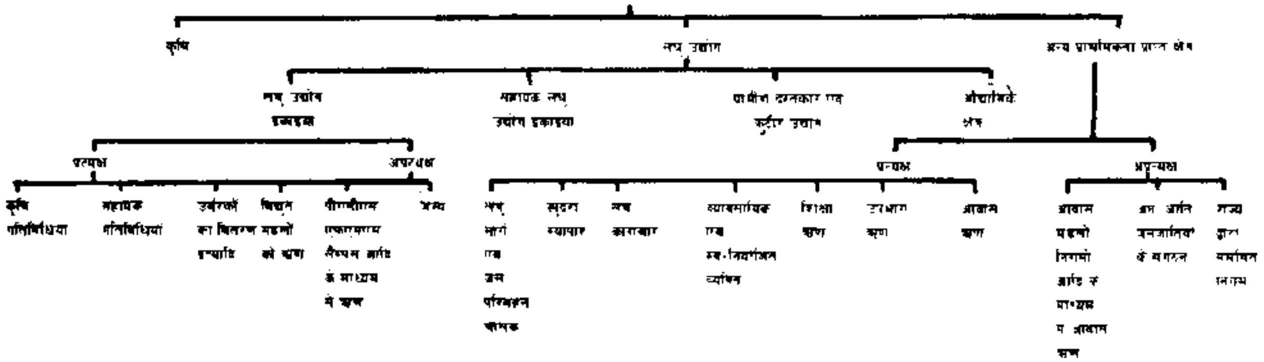

लैम्पस बृहदाकार आदिवासी बहुउद्देश्यीय समिति

सारणी-2

सरकारी क्षेत्र के बैंकों द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को अग्रिम

	क्षेत्र	बकाया राशि (करोड़ रुपयों में)	
		जून 1969	जून 1989
1.	कृषि	162	14369
		(5.4)	(18.4)
	प्रत्यक्ष	40	12920
		(1.3)	(16.5)
	अप्रत्यक्ष	122	1449
		(4.0)	(1.9)
2.	लघु उद्योग	257	13248
		(8.5)	(16.9)
3.	अन्य प्राथमिक प्राप्त क्षेत्र	22	7257
		(0.7)	(9.3)
4.	कुल प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के ऋण	441	34874
		(14.6)	(44.6)
5.	शुद्ध बैंक ऋण	3016	78178
		(100.0)	(100.0)
6.	शुद्ध बैंक ऋण में प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के अग्रिमों का प्रतिशत	14.6	44.6
7.	शुद्ध बैंक ऋण में प्रत्यक्ष कृषि अग्रिमों का प्रतिशत	1.3	16.5

1986 में 0.15 प्रतिशत और फिर 1987 में 0.17 प्रतिशत हो गया जिसे सारणी-4 में बताया गया है।

लाभप्रदता में 1984 तक निरन्तर गिरवाट मुख्य रूप से बाह्य कारणों से थी तथा 1985 के पश्चात इस प्रवृत्ति में सुधार मुख्य रूप से भारतीय रिजर्व बैंक या केन्द्रीय सरकार के द्वारा उठाये गये कदमों के कारण हुआ। 1984 में लाभप्रदता में गिरावट के मुख्य कारण जमाओं पर दी जाने वाली ब्याज दर में वृद्धि, अग्रिमों पर ली जाने वाली ब्याज दरों में कमी, तथा

सारणी-3

सरकार द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम

नया 20 सूत्री कार्यक्रम	समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम	विभेदात्मक ब्याज दर योजना	शिक्षित बेरोजगार युवाओं को स्वरोजगार उपलब्ध करवाने की योजना (सीयू)	स्वरोजगार हेतु ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण (ट्राइसेम)	शहरी गरीबों को स्वरोजगार कार्यक्रम (सेपप)

सारणी-4

1981 से 1987 तक के 28 सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का शुद्ध लाभ और लाभप्रदता अनुपात

(करोड़ रुपयों में)

	1975	1981	1982	1983	1984	1985	1986	1987
1. शुद्ध लाभ (प्रकाशित)	—	64.47	77.57 (20)	84.35 (8.7) 3.2	82.35 (-2.2)	117.8 (42.8)	192.5 (63.4) 61.1	261.7 (35.9)
2. कार्यशील निधियां	—	55053	64847	77004	91632	109342	127423	151270
3. लाभप्रदता अनुपात	0.23	0.12	0.12	0.11	0.09	0.11	0.15	0.17

कर्मचारियों के वेतनमान में संशोधन के परिणामस्वरूप किए गए भुगतानों के कारण हुई। इसी तरह 1985 और इसके पश्चात लाभप्रदता में सुधार मुख्य रूप से खाद्य अग्रिमों की ब्याज दरों में बढ़ोतरी, नकद प्रारक्षित पर ब्याज दर में वृद्धि, सरकारी प्रतिभूतियों की प्रत्याय में वृद्धि, राष्ट्रीयकृत बैंकों की पूंजी में वृद्धि, स्टाफ की भर्ती पर प्रतिबंध तथा धीमी गति से शाखा विस्तार।

बैंकों की लाभप्रदता में गिरावट

बैंकों के राष्ट्रीयकरण से लेकर 1984 तक लाभप्रदता में गिरावट का कारण आय में धीरे-धीरे कमी तथा विभिन्न व्ययों में वृद्धि थी। बैंकों की लाभप्रदता में गिरावट के अनेक आन्तरिक एवं बाह्य कारकों के साथ-साथ 1969 में इन पर थोपे गये सामाजिक दायित्व थे। सामाजिक लक्ष्यों को पाने के लिए बैंकों को 4 प्रतिशत से 14/15 प्रतिशत की ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराये जाते हैं। वर्ष 1969 में शुद्ध बैंक ऋण का प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के अग्रिम का 14.6 प्रतिशत था जो बढ़कर जून 1989 में 44.6 प्रतिशत हो गया। इन अग्रिमों पर औसत प्रत्याय लगभग 11 प्रतिशत है जबकि अन्य परम्परागत अग्रिमों पर औसत प्रत्याय पर 16 प्रतिशत है। औद्योगिक रुग्णता के परिणामस्वरूप भी बैंकों को पर्याप्त ब्याज की हानि हो रही है। वैधानिक तरलता अनुपात तथा नकद प्रारक्षित अनुपात में शुद्ध मांग एवं सावधि देयताओं का 53 प्रतिशत रखना पड़ता है जिस पर औसत प्रत्याय लगभग 7.5 प्रतिशत है जबकि ऋण योग्य कोषों पर लगभग 13 प्रतिशत औसत प्रत्याय है। जून 1989 तक वाणिज्यिक बैंकों की लगभग 57 प्रतिशत शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। ग्रामीण शाखाओं को व्यवस्थित करने में लगभग 4/5 वर्ष लग जाते हैं तब तक अत्यधिक व्यय करना पड़ता है तथा इसके बावजूद भी अधिकांश ग्रामीण शाखाएं हानि पर चल रही हैं। जून 1969 तक कुल जमाओं में सावधि जमाओं का प्रतिशत 49.3 था जो बढ़कर जून 1986 में 55.6 प्रतिशत हो गया तथा मांग जमाओं का प्रतिशत जून 1969 में 23.8 प्रतिशत था जो घटकर 14.9 हो गया। चूंकि सावधि जमाओं की लागत मांग जमाओं की तुलना में अधिक होती है जिससे बैंकों की लाभप्रदता प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है। वर्तमान में कॉरपोरेट क्षेत्र द्वारा जनता से सीधे ही जमाएं प्राप्त करने के परिणामस्वरूप वाणिज्यिक बैंकों की मध्यस्थता समाप्त हो गई जो कि जनता से कम लागत पर धन प्राप्त करके कॉरपोरेट क्षेत्र को अधिक ब्याज दर पर देकर कुछ लाभ अर्जन करते थे। बैंकों द्वारा की जाने वाली

अनेक सहायक सेवाएं अत्यधिक लागत वाली हैं।

बैंकों की लाभप्रदता में सुधार के लिए उठाए गए कदम

भारतीय रिजर्व बैंक एवं केन्द्र सरकार ने बैंकों की लाभप्रदता में सुधार के लिए अनेक कदम उठाए हैं जैसे—खाद्य ऋण की ब्याज दर में बढ़ोतरी, सरकारी प्रतिभूतियों की कूपन दरों में वृद्धि, मांग और मियादी देयताओं के 3 प्रतिशत से अधिक के प्रारक्षित नकदी अनुपात पर ब्याज की अदायगी, सरकारी क्षेत्र के बैंकों की पूंजी में अंशदान आदि शामिल हैं। बैंकों के कार्यकलापों और सेवाओं की गुणवत्ता को समन्वित करके उसमें सुधार लाने के लिए कार्य योजनाएं बनाने के निर्देश दिए गए हैं जिसमें संगठनात्मक ढांचे, प्रशिक्षण एवं मानव संसाधन विकास, ग्राहक सेवा, जमा संग्रहण, ऋण प्रबंध, हाउस कीपिंग, लाभप्रदता जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र शामिल हैं। इस प्रकार की कार्य योजना के परिणामस्वरूप बैंक अपनी प्रशासनिक लागत को कम करके और सभी स्तरों पर उत्पादकता में सुधार करके अपनी लाभप्रदता को सुधार सकेंगे।

बैंकों की लाभप्रदता बढ़ाने हेतु कुछ सुझाव

बैंकों की लाभप्रदता बढ़ाने हेतु लाभप्रद व्यवसाय का प्रचार किया जाना चाहिए ताकि और अधिक आय हो तथा फिजूलखर्ची रोकी जानी चाहिए। आय में निरन्तर वृद्धि तथा बेकार के व्ययों को कम करके लाभ को बढ़ाया जा सकता है। बैंकों को अपनी नीतियों के अनुसार शाखाओं को लाभप्रद बजट देना चाहिए तथा उसका गहन मानिटरिंग संबंधित नियंत्रक प्राधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए। बैंक को अपने व्ययों के अनुसार अपने व्यवसाय को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए। लाभ में वृद्धि करने के कुछ सुझाव इस प्रकार हैं:

1. बैंकों को निर्धारित सेवा प्रभारों को उचित रूप से लागू करना चाहिए।
2. आय के रिसाव (लीकेज) को रोका जाना चाहिए।
3. वसूली में सुधार तथा कृषि एवं अन्य खण्डों में कोषों का तत्काल पुनः आवर्तन किया जाना चाहिए।
4. प्रधान कार्यालय तथा प्रशासनिक कार्यालयों में यथासंभव खर्चों में कमी करनी चाहिए।
5. शाखाएं खोलने के लिए ऐसे स्थानों पर भवन किराए पर लिया/बनाया जाना चाहिए जहां पर्याप्त व्यापार संभावनाएं हों।
6. हानि उठा रही शाखाओं की संख्या तथा हानि की राशि को कम करने का प्रयास किया जाना चाहिए।
7. नकदी का प्रबंधन कार्यकुशलता से किया जाना चाहिए।
8. आय सत्यापन अंकेक्षण का क्षेत्र अधिक शाखाओं तक बढ़ाकर आय के रिसाव को रोका जाना चाहिए।
9. बड़ी शाखाओं के खर्चों तथा आय पर नियमित अन्तरालों पर मानिटरिंग किया जाना चाहिए।
10. प्रेषण, संग्रहण, परक्रामण आदि नान फंड आधारित व्यवसाय को बढ़ाने के प्रयास किया जाना चाहिए।
11. ब्याज रहित/निम्न ब्याज वाली जमा राशियों के हिस्से में आवश्यक सुधार के प्रयास किये जाने चाहिए।
12. संयुक्त अग्रिमों में नान फंड व्यापार पर आनुपातिक आय को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
13. प्रत्याख्यात (प्रोटेस्टेट) बिल खातों, दायर किए गए वादों, निर्णित खातों तथा अवरुद्ध अग्रिमों के अन्तर्गत बकायों को घटाने हेतु गहन अनुवर्ती कार्यवाई की जानी चाहिए।
14. डी. आई. सी. जी. सी. की गारन्टी की यथासंभव याचना की जानी चाहिए।
15. स्टेशनरी का उचित प्रयोग सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
16. तार भेजते समय उपलब्ध संक्षिप्त रूपों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
17. एस. टी. डी. सुविधा का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए।
18. वैधानिक तरल कोषों का विनियोजन उचित प्रतिभूतियों में किया जाना चाहिए क्योंकि सिर्फ आधा प्रतिशत ब्याज दर से ही आय में बड़ा अन्तर पड़ता है।
19. बैंकों की परिचालन लागतें तीन प्रकार की होती हैं: जमाओं पर चुकाया जाने वाला ब्याज, प्रशानिक व्यय और अन्य व्यय। जमाओं पर ब्याज को कम करने की कोई गुंजाइश नहीं है, यदि संभव हो तो जमा मिश्रण बदला जा सकता है। इस प्रकार प्रशासनिक लागतें भी बाह्य तत्वों से शासित होती हैं जो कि अनियंत्रणीय हैं। सिर्फ अन्य लागतों में ही कमी की जा सकती है। अतः इसे यथासंभव कम करने का प्रयास किया जाना चाहिए।
20. सभी स्तर के बैंक कर्मचारी/अधिकारियों को लाभप्रदता के महत्व से अवगत कराया जाना चाहिए।

अतः बैंकों की लाभप्रदता में सुधार करने के लिए आन्तरिक पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण प्रणाली को विकसित करके, मानव

संसाधन विकास के लिए प्रशिक्षण की गुणवत्ता तथा क्षमता में वृद्धि करके, ग्राहक सेवा तथा हाउस कीपिंग में सुधार करके, अच्छे ऋण प्रबंधन, उच्च उत्पादकता, खर्च में मितव्ययता कर, देय राशियों की वसूली कर तथा चरणबद्ध रूप में नई तकनीक लागू करके इसमें सुधार किया जा सकता है।

बैंक सामाजिक बैंकिंग के उद्देश्यों को प्राप्त करने के भरसक प्रयास कर रहे हैं और अपने कोषों को समाज के सभी वर्गों के आर्थिक उन्नति में लगा रहे हैं। वर्तमान में भारतीय बैंकिंग व्यवस्था संभवतः विश्व की ऐसी सबसे बड़ी बैंकिंग व्यवस्था है जिसके निश्चित सामाजिक उद्देश्य हैं जो हर वर्ग के आर्थिक विकास के लिए प्रतिबद्ध है। बैंकिंग उद्योग की योजनाओं एवं कार्यक्रमों को देखते हुए सहज ही यह धारणा बनती है कि बैंकों ने देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति तथा विनियमात्मक नियंत्रणों सहित कई अन्य कारणों से बैंकों की लाभप्रदता में गिरावट आई है। अब चूंकि सामाजिक उद्देश्यों के लक्ष्यों को प्राप्त करना बैंकों की अनिवार्य आवश्यकताएं हैं। अतः अपने लाभप्रदता में वृद्धि लाने के लिए भारतीय बैंक तेजी से नई-नई गतिविधियां अपना रहे हैं जैसे व्यापार बैंकिंग, पट्टे पर उपकरण देना, जोखिम पूंजी, पारस्परिक निधियां, फेक्टरिंग, आवासन, क्रेडिट कार्ड व्यवसाय आदि। अतः बैंकों को अपने सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के साथ ही अपनी लाभप्रदता पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि बैंकिंग क्षेत्र में भविष्य में आने वाली चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना किया जा सके।

स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर,
निरीक्षण विभाग,
प्रधान कार्यालय,
जयपुर।

अनुरोध

रमेशचन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

बरसो-बरसो मेघ!
गांव-गांव में, नगर-नगर में
खेतों में बरसो!
इतना तपना पड़ा कि
यह तन श्याम हो गया
पहले था बदनाम
आज सरनाम हो गया!
हरसो-हरसो मेघ!
गांव-गांव में, नगर-नगर में
खेतों में हरसो!
धरती बन्दनवार
सजाये कब से बैठी?
पलकों के पांवड़े
बिछाये कब से बैठी?

सरसो-सरसो मेघ!
गांव-गांव में, नगर-नगर में
खेतों में सरसो!
दाता होकर कृपण मत बनो
जल को बांटो!
समदर्शी हो भेद-भाव की
जड़ को काटो!
परसो-परसो मेघ!
गांव-गांव को, नगर-नगर को
खेतों को परसो!

64/1525 मेधाणी नगर
अहमदाबाद-380016

ग्रामीण विकास में वाणिज्यिक बैंकों का योगदान

राजकुमार गुप्ता

भारत को आधारभूत रूप से ग्रामीण भारत कह सकते हैं, क्योंकि यहां की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या आज भी गांव में रहती है, जिसका मुख्य व्यवसाय खेती है। इस ग्रामीण क्षेत्र को जिसे प्राथमिक क्षेत्र भी कह सकते हैं का कुल राष्ट्रीय आय में योगदान 50 प्रतिशत से भी अधिक है जो इसके महत्व को व्यक्त करता है।

भारत का समन्वित विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि प्राथमिक क्षेत्र का विकास किया जाये। ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के रहन-सहन के स्तर में वृद्धि करने के लिए ग्रामीण क्षेत्र का गुणात्मक विकास वर्तमान समय की मांग है, ताकि समस्त देश के जीवन-निर्वाह स्तर को सुधारा जा सके।

ग्रामीण क्षेत्र के विकास से आशय इसके सभी क्षेत्रों के विकास से है, जिसमें कृषि, छोटे पैमाने के उद्योग, कपड़ा उद्योग, घरेलू उद्योग, छोटे-व्यवसाय एवं पेशे, स्वरोजगार योजना, शिक्षा, परिवहन तंत्र आदि सभी को सम्मिलित किया जाता है, जिन्हें हमारी पंचवर्षीय योजनाओं तथा विभिन्न वित्तीय एजेंसियों के द्वारा प्राथमिक क्षेत्र में रखा गया है।

किसी भी क्षेत्र का तीव्र गति से विकास करने के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्त की आवश्यकता होती है जिसे वह अपने संसाधनों एवं साख के आधार पर पूरा कर सकता है। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू साख का अभाव रहा है। 1954 में ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने स्पष्ट किया था कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में साहुकारों द्वारा 70 प्रतिशत साख की आवश्यकता पूरी की गयी, जिनके द्वारा निर्धनों का उनसे अत्यधिक ब्याज तथा बेगार लेकर शोषण किया जाता था, इस शोषणकारी प्रवृत्ति को रोकने तथा ग्रामीण वित्त विस्तार के लिए सरकार ने समय-समय पर अनेक सुधारात्मक कार्यवाही की जिसमें साख समितियों, सहकारी बैंकों, भूमि विकास बैंकों, जुलाई 1969 में 14 बड़े वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं की स्थापना प्रमुख है। इसी शृंखला में 12 जुलाई 1982 को संसद के एक अधिनियम द्वारा 'कृषि तथा ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक' की स्थापना की गयी, जो कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र के लिए वित्त व्यवस्था की दृष्टि से सर्वोच्च बैंक है।

ग्रामीण वित्त व्यवस्था में वाणिज्यिक बैंकों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ये बैंक प्राथमिक क्षेत्र की इकाइयों को वित्तीय सुविधा प्रदान कर ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। सर्वप्रथम जुलाई 1969 में 14 बड़े वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण भी हमारी तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी के द्वारा प्रमुख रूप से ग्रामीण क्षेत्र के विकास को ध्यान में रखकर ही किया गया था। जुलाई 1989 में इन बैंकों के राष्ट्रीयकरण को 20 वर्ष पूरे हो चुके हैं। अपने राष्ट्रीयकरण के इन 20 वर्षों में इन बैंकों ने ग्रामीण विकास के क्षेत्र में क्या भूमिका निभाई है इसका मूल्यांकन हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं।

कृषि

कृषि हमारे देश में केवल जीविकोपार्जन का साधन मात्र ही नहीं वरन् अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। राष्ट्र की समृद्धि, योजना की सफलता, विदेशी मुद्रा का अर्जन, राजनैतिक स्थायित्व इत्यादि सभी कृषि के विकास पर निर्भर है। कृषि क्षेत्र के विकास के लिए यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र में अपनायी गयी हरित क्रांति को सफल बनाया जाये, यह आधुनिकतम बीजों, रसायन खादों तथा उत्पादन की नवीनतम तकनीक के प्रयोग द्वारा ही सम्भव है। भारतीय किसान जो गरीब हैं उसे उपर्युक्त संसाधन जुटाने के लिए अनेक प्रकार के ऋणों की आवश्यकता होती है, वाणिज्यिक बैंकों द्वारा कृषि के इन विभिन्न कार्यों के लिए किसानों को ऋण प्रदान किये जाते हैं। जून 1969 तक इन बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र को 188 करोड़ रुपये के ऋण प्रदान किये गये थे जो जून 1988 तक बढ़कर 12010.54 करोड़ रुपये के हो गये। इस अवधि में इस ऋण राशि में लगभग 64 गुणा वृद्धि हुई। 1988 की यह ऋण राशि कुल शुद्ध बैंक ऋण की 17.1 प्रतिशत बनती है जबकि 1969 में कृषि को दी गयी ऋण राशि कुल अग्रिम का 5.2 प्रतिशत थी।

कृषि के क्षेत्र में छोटे किसानों को राहत पहुंचाने के लिए वाणिज्यिक बैंकों के द्वारा 1 मार्च 1988 से 15,000 रुपये तक की राशि के ऋणों पर 1 प्रतिशत से 2½ प्रतिशत तक ब्याज दरों में कमी की गयी है, जो कृषि क्षेत्र के विकास हेतु एक

महत्वपूर्ण कदम है। अब 15,000 रुपये तक की विभिन्न ऋण राशियों पर वर्तमान ब्याज दर निम्न प्रकार है :

किसानों के लिए अल्पकालीन अवधि के ऋणों की ब्याज दर

(प्रतिशत, प्रतिवर्ष)

	अग्रिम राशि	29 फरवरी 1988 तक प्रभावी	1 मार्च 1988 से प्रभावी
1.	5000 रुपये तक	11.50	10.0
2.	5000 रु. से अधिक तथा 7500 रु. तक	12.50	10.0
3.	7500 रु. से अधिक तथा 10,000 रु. तक	12.50	11.50
4.	10,000 रु. से अधिक तथा 15,000 रु. तक	12.50-14.00	11.50

उपर्युक्त विवरण कृषि के विकास में इन बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका को व्यक्त करते हैं।

छोटे पैमाने के उद्योग

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में जहां पूंजी का अभाव और बेरोजगारी का साम्राज्य है, कुटीर एवं लघु उद्योग, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी पहलुओं से देश के ग्रामीण विकास की आधारशिला है। हमारे देश में छोटे पैमाने के उद्योग साधारणतया असंगठित तथा बिखरे हुए हैं, अपर्याप्त बाजार, पुरानी उत्पादन तकनीक, प्रबन्ध की नवीन प्रणाली का अभाव, कार्यशील पूंजी की कमी, अप्रशिक्षित कर्मचारी आदि इन उद्योगों की आज की प्रमुख समस्याएं हैं। इन विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु इन औद्योगिक इकाइयों को पर्याप्त वित्त की आवश्यकता होती है।

वाणिज्यिक बैंकों के द्वारा छोटे पैमाने की इन औद्योगिक इकाइयों की वित्त मांग की पूर्ति हेतु, कार्यशील पूंजी, स्थायी सम्पत्ति के क्रय आदि अनेक कार्यों के लिए ऋण प्रदान किये जाते हैं। जून 1969 तक इन बैंकों द्वारा छोटे पैमाने के उद्योगों को 204 करोड़ रुपये के ऋण प्रदान किये गये थे जिनकी राशि जून 1988 में बढ़कर 10874.24 करोड़ रुपये हो गयी जो 1969 की राशि की 53 गुणा से भी अधिक है। इस अवधि में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा प्रदान सहायता राशि में वृद्धि के साथ-साथ सहायता प्राप्त औद्योगिक इकाइयों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। जून 1969 में इन बैंकों द्वारा वित्तपोषित इकाइयों की संख्या 57000 थी जो मार्च 1986 में बढ़कर 10 लाख हो गयी। मार्च 1969 तक इन बैंकों ने अपने कुल अग्रिम का 6.9 प्रतिशत भाग ही इस प्रकार के उद्योगों को दिया था जब कि जून 1988 में यह प्रतिशत बढ़कर 15.4 हो गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास में भी वाणिज्यिक बैंकों का योगदान महत्वपूर्ण रहा।

अन्य क्षेत्र

प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र की अन्य इकाइयों जैसे यातायात संचालकों, फुटकर विक्रेताओं, छोटे व्यवसायियों एवं स्वरोजगार योजना के अन्तर्गत ऋण, घरेलू उद्योगों, शिक्षा, गरीबों को घरेलू ऋण, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए उपभोक्ता ऋण एवं इन बैंकों द्वारा प्रदान अन्य अप्रत्यक्ष वित्तीय सहायता में भी वृद्धि हुई है। जून 1969 में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा इन्हें 23 करोड़ रुपये की अग्रिम राशि प्रदान की गयी थी जो जून 1988 में बढ़कर 6245.14 करोड़ रुपये हो गयी। यह राशि 1969 की राशि के 271 गुणा है। इस क्षेत्र में भी इन बैंकों का प्रयास सराहनीय रहा।

शाखा विस्तार

भारतीय बैंकिंग प्रणाली की जो सबसे बड़ी विशेषता रही है वह है बैंकिंग कार्यालयों का असाधारण विस्तार। बैंकों के राष्ट्रीयकरण ने विस्तार की इस प्रक्रिया को ओर भी तेज किया। शाखा विस्तार की यह प्रक्रिया ग्रामीण क्षेत्रों में भी अपनायी गयी। 1969 से 1988 की अवधि के बीच बैंकों की शाखाओं में लगभग 7 गुणा वृद्धि हुई, जून 1969 में औसतन 65000 व्यक्तियों के पीछे एक बैंक शाखा थी जिनकी संख्या घटकर जून 1988 में 12000 व्यक्ति हो गयी। राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों की 46694 शाखाएं खोली गयी जिनमें से 30745 शाखाएं ग्रामीण क्षेत्र में खोली गयी। जून 1988 में ग्रामीण शाखाओं की संख्या कुल संख्या का 56 प्रतिशत हो गयी जबकि जून 1969 में यह 22 प्रतिशत थी।

सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ में हमारे देश में ब्लाक स्तर पर 675 केन्द्र बैंक रहित थे तथा बहुत से ग्राम पंचायत क्षेत्रों में भी बैंकिंग की सुविधा नहीं थी। रिजर्व बैंक की नीति के अनुसार बैंकों की नयी शाखाएं इन पंचवर्षीय योजना में ऐसे ही बैंक रहित केन्द्रों पर खोली जायेंगी, इसमें ग्रामीण क्षेत्रों को विशेष प्राथमिकता दी जायेगी। मार्च 1988 तक इन 675 केन्द्रों में से बैंक 644 केन्द्रों को अपने कार्य क्षेत्र में ला चुके हैं। वर्ष 1987-88 के बीच व्यवसायिक बैंकों की 1124 शाखाएं खोली गयीं जिनमें से 1028 शाखाएं अर्थात 91.4 प्रतिशत शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में खोली गयीं। इस प्रकार वाणिज्यिक बैंक सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र को अपने कार्यक्षेत्र में ला रहे हैं जो ग्रामीण क्षेत्र के समन्वित विकास के लिए आवश्यक है। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को

1969 से जून 1988 तक दिये गये अग्रिमों का विवरण निम्न तालिका के द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दिये गये अग्रिम :

(करोड़ रुपये में)

क्रमांक	क्षेत्र	1969	1980	1982	1984	1986	जून 1988
1	2	3	4	5	6	7	8
1.	कृषि	188	3097	5288	6681	9071	12011
		** (37.2)	(42.5)	(42.8)	(41.0)	(42.0)	(41.4)
2.	छोटे पैमाने के उद्योग	294	3391	4464	5900	7808	10874
3.		(58.2)	(46.7)	(36.2)	(36.2)	(36.3)	(37.2)
4.	अन्य प्राथमिक क्षेत्र	23	790	2535	3658	4705	6245
		(4.6)	(10.8)	(21.5)	(22.8)	(21.7)	(21.4)
	योग	505	7278	12287	16219	21584	29130
		(14.0)	(21.0)	(36.1)	(37.8)	(40.9)	(45.7)

** कोष्ठ में दिखायी गयी संख्या प्रतिशत में है तथा राशि पूर्णांक में ली गयी है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि वाणिज्यिक बैंकों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में शाखा विस्तार करने तथा सरल ऋण नीति अपनाने से ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में तीव्रता आयी है। इन बैंकों द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को जून 1969 में 505 करोड़ रुपये की राशि अग्रिम के रूप में दी गयी थी जो जून 1988 में बढ़कर 29130 करोड़ रुपये की हो गयी। यह 1969 की राशि के 58 गुणा से भी अधिक है। जून 1988 की यह राशि इन बैंकों के कुल अग्रिम का 45.7 प्रतिशत बैठती है जबकि 1969 में यह 14 प्रतिशत थी। इससे स्पष्ट है कि प्राथमिक क्षेत्रों के विकास में इन बैंकों का योगदान महत्वपूर्ण रहा।

ग्रामीण विकास में बैंकों के सामने आने वाली समस्याएं

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में इन बैंकों के समक्ष जो प्रमुख समस्या आ रही है वह ऋण की वसूली न होना है। ऋण की वसूली में कमी बैंक कोषों के पुनः प्रयोग में अवरोध उत्पन्न करती है। दिसम्बर 1986 के अन्त में प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों की बकाया राशियां कुल बकाया ऋण की 20 प्रतिशत थी जबकि गैर प्राथमिक क्षेत्रों की बकाया राशि 11.5 प्रतिशत थी। प्रत्यक्ष कृषि ऋणों के सम्बन्ध में भी वसूली कार्य निष्पादन की स्थिति असन्तोषजनक बनी हुई है।

ऋण वसूली में सबसे अधिक दिक्कतें छोटे व मझौले किसानों तथा व्यवसायिक ऋणियों से वसूली में आती है। ऋण वसूली न होने के प्रमुख कारण ऋण वसूली की अवधि में वृद्धि कर देना, ऋणों का अनुत्पादक कार्यों का अनुत्पादक कार्यों के लिये प्रयोग, सरकार द्वारा ऋणों के भुगतान से मुक्ति, अप्रशिक्षित कर्मचारियों द्वारा अप्रभावी वसूली, प्राकृतिक विपदाएं तथा ऋणियों की कम लाभदायकता आदि है। इसके लिये बैंकों को समग्र वसूली विषयक कार्य निष्पादन के सम्बन्ध में विभिन्न स्तरों पर अपने तंत्र को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है।

बैंकों के पिछले दो दशकों के विकास से यह स्पष्ट है कि वाणिज्यिक बैंक भविष्य में ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं, लेकिन इसके लिए बैंकों के कार्य निष्पादन में सुधार की काफी गुंजाइश है। जैसे कृषि क्षेत्र में दिये गये ऋणों की प्राप्ति तथा उनकी वापसी के सम्बन्ध में मार्ग दर्शन प्रदान किये जायें। इसके साथ ही कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित क्रियाओं के विकास पर भी इन बैंकों को ध्यान देना चाहिए जैसे यातायात की सुविधाएं, भण्डारण सुविधा, बाजार व्यवस्था, कृषि-उपकरणों के मरम्मत केन्द्र आदि क्योंकि इनके विकास से इस क्षेत्र की लाभदायकता में वृद्धि होगी।

इसी प्रकार छोटे पैमाने के उद्योगों एवं अन्य क्षेत्रों को ऋण देते समय बैंकों को अपने प्रयासों से यह निश्चित कर लेना चाहिए कि ऋण लेने वाला उद्योग इस योग्य है कि नहीं कि ऋण की राशि से इतनी आय प्राप्त कर लेगा जिससे कि वह अपनी रोजी-रोटी के साथ-साथ ऋण की राशि वापस करने में भी सक्षम होगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि इन उद्योग स्वामियों को विपणन, वित्त, उत्पादन तथा प्रबन्ध आदि कार्यों के लिए विशेषज्ञों द्वारा निःशुल्क परामर्श प्रदान किया जाये ताकि उन्हें उस क्षेत्र का समुचित ज्ञान कराया जा सके।

वाणिज्यिक बैंकों के कार्य सुधार के लिए कर्मचारियों के व्यवहार में भी परिवर्तन आना आवश्यक है, बैंकों के कर्मचारियों को अपने कुशल एवं मृदुल व्यवहार द्वारा ग्रामीण क्षेत्र की जनता को बैंकिंग प्रणाली का समुचित ज्ञान कराना चाहिए, ताकि इस क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों में अधिकाधिक मात्रा में बैंकिंग की आदत का विकास किया जा सके। वाणिज्यिक बैंकों के कार्य सुधार के लिए भारतीय रिजर्व बैंक के द्वारा भी इन बैंकों से कहा गया है कि वे अपनी ग्रामीण शाखाओं में सप्ताह में एक दिन को बिना सार्वजनिक कारोबार के कार्य दिवस रखें ताकि शाखाओं के प्रबन्धक फील्ड में जाकर जमा राशियां जुटाने, ऋण के उपयोग पर निगरानी रखने और ऋण-कर्ताओं का समुचित मार्गदर्शन जैसे विकास और संवर्द्धन आदि कार्यों के लिए उस दिन को पूरी तरह अपने वर्तमान और भावी ग्राहकों से सम्पर्क करने में बिता सकें।

2, बाबा सदानन्द मार्ग
ऋषिकेश (देहरादून)

सामाजिक परिवर्तन और बैंकों की भूमिका

डा. विनोद गुप्ता

19 जुलाई 1969 को जब बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ था, तब कुछ लोगों ने सोचा था कि सारी बैंकिंग व्यवस्था ही ठप्प हो जाएगी, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ और बैंकिंग उद्योग का चहुंमुखी विकास हुआ। राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकिंग के दृष्टिकोण से हटकर सामाजिक परिवर्तन आया है और बैंकों ने मुद्रा-विनिमय भूमिका से हटकर सामाजिक परिवर्तन की भूमिका बखूबी निभाई है।

पहले बैंकों का कार्य धन जमा करना व ऋण प्रदान करना ही था। अब बैंकों के दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन हो गया है। बैंक सामाजिक क्षेत्र में भी लोगों की सहायता कर रहे हैं। बैंक अब समाज सेवक के रूप में भी कार्य करने लगे हैं।

भारतवर्ष में साहूकारी प्रथा बहुत पुराने समय से चली आ रही थी। परंतु बैंकिंग प्रणाली का उदय अंग्रेजों के शासन काल में हुआ। मनुष्य में अपना भविष्य सुरक्षित करने की गहरी प्रवृत्ति होती है और इसी धारणा से वह बचत करने की ओर उद्यत होता है। इसी सामाजिक बचत धारणा से प्रेरित होकर सन् 1770 ई. में बैंक आफ हिन्दुस्तान के नाम से देश में प्रथम बैंक की स्थापना की गई।

व्यवसायिक बैंकों की संख्या में देश की आजादी के बाद काफी वृद्धि हुई किन्तु इनमें लाभ कुछ विशेष वर्ग के लोगों को ही प्राप्त था, जन सामान्य को नहीं। अतैव जनहित के लिए 19 जुलाई, 1969 को 14 बड़े व्यापारिक बैंकों का, जिनकी पूंजी 50 करोड़ से अधिक थी, राष्ट्रीयकरण किया गया।

इसके अतिरिक्त 15 अप्रैल सन् 1980 को पुनः 6 व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। ये बैंक हैं: 1. आंध्र बैंक, 2. कारपोरेशन बैंक, 3. न्यू बैंक आफ इंडिया, 4. ओरिएण्टल बैंक आफ कामर्स, 5. पंजाब एंड सिंध बैंक और 6. विजया बैंक।

जब पहली बार बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था, तब इनकी शाखाओं की कुल संख्या 8265 थी जबकि इस समय देश में सरकारी क्षेत्र के बैंकों की संख्या 57700 के लगभग है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बैंकों की शाखाओं एवं व्यवसाय में अच्छी प्रगति हुई तथा इस समय स्टेट बैंक और उसके सहयोगी बैंकों को मिला कर राष्ट्रीयकृत बैंकों की कुल संख्या 28 हो गई है। यह सभी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक कहलाते हैं।

ग्रामीणों को कम लागत पर बैंकिंग सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सन् 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई। 30 जून सन् 1969 से 30 जून 1988 के बीच खोली गई बैंकों की शाखाएं 47148 थीं जिनमें से 29288 शाखाएं लगभग (62.1 प्रतिशत) ग्रामीण क्षेत्रों में खोली गई थीं। जून 1969 में व्यापारिक बैंकों की संख्या 8262 थी जो जून 1988 तक बढ़ कर लगभग 56 हजार हो गई जिनमें से 7643 स्टेट बैंक, 3445 स्टेट बैंक के सहयोगी बैंक, 26404 अन्य राष्ट्रीयकृत व्यापारिक बैंक, 4175 रिजर्व बैंक के द्वितीय सूचीकृत बैंक, 136 विदेशी बैंक, 39 असूचीकृत बैंक व 13568 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की शाखाएं थीं।

दिसम्बर 1989 को समाप्त वर्ष के दौरान देश भर में अधिक-से-अधिक 2286 नए कार्यालय खोले गए। इनमें से 1,931 ग्रामीण केंद्रों में, 271 शहरी और महानगरीय केन्द्रों में तथा 84 अर्ध शहरी केन्द्रों में खोले गए। बैंक समूहों में राष्ट्रीयकृत बैंकों ने अधिक-से-अधिक 1248 नए कार्यालय खोले तथा भारतीय स्टेट बैंक और उसके सहयोगी बैंक (534), क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (440) तथा निजी क्षेत्र के बैंक (64) का स्थान रहा।

बैंक राष्ट्रीयकरण के समय 65 हजार की जनसंख्या के पीछे बैंक की एक शाखा कार्यरत थी वहां आज प्रति 13 हजार जनसंख्या पर एक शाखा उपलब्ध है। 21वीं सदी के आरम्भ में प्रति पांच हजार जनसंख्या पर एक बैंक शाखा स्थापित करने का लक्ष्य है।

बैंक राष्ट्रीयकरण के पूर्व वाणिज्य संस्था के रूप में केवल विशेष वर्ग के लिए काम करते थे और अधिकांश शाखाएं शहरी क्षेत्रों में ही थी। राष्ट्रीयकरण के समय ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की कुल 1960 शाखाएं थी जबकि आज ग्रामीण शाखाओं की संख्या बढ़कर 31000 हो गई है। बैंक राष्ट्रीयकरण के पूर्व

कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए साहूकार अथवा महाजन ही वित्तीय व्यवस्था के प्रमुख साधन थे जो ग्रामीणों का न केवल शोषण ही करते थे वरन उन्हें आजीवन ऋण में डुबोए रखते थे। ग्रामीण समुदाय की आर्थिक-सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों के विस्तार कार्यक्रम के अन्तर्गत खोली गई शाखाओं का 60 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में खोली गई है। बैंकिंग विस्तार की वर्तमान नीति गांवों तथा अर्द्ध शहरी इलाकों में बैंकिंग व्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ बनाने की है, जहां बैंक बिल्कुल नहीं है। चालू पंचवर्षीय योजना के अन्त तक पूरे देश में हर 10 किलोमीटर पर एक बैंक की शाखा खोल दी जाएगी।

राष्ट्रीयकरण से पूर्व 65 प्रतिशत से भी अधिक ऋण बड़े तथा मंझले उद्योगों तथा थोक व्यापारियों को दिए जाते थे लेकिन राष्ट्रीयकरण के बाद प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को अधिक ऋण मिलने लगा है। आज यह सुविधा किसानों, कमजोर वर्गों और बेरोजगारों को उपलब्ध है। आज बैंक के कार्यक्षेत्र में आई. आर. डी. पी., डी. आर. आई., ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण (ट्राइसेम) आदि अनेक योजनाएं चालू हैं। राष्ट्रीयकरण के पूर्व इन योजनाओं का अभाव था। राष्ट्रीयकृत बैंकों से कहा गया है कि वे प्राथमिकता क्षेत्रों की ऋणों की मात्रा ही नहीं बढ़ाएं, बल्कि यह भी देखें कि इन ऋणों का पर्याप्त हिस्सा वास्तव में कमजोर वर्ग के छोटे और निर्धन ऋणियों तक पहुंचे। इसलिए बैंकों से कहा है कि वे प्राथमिकता क्षेत्रों को ऋण देने में इतनी वृद्धि करें कि कुल ऋण का 20 प्रतिशत इन क्षेत्रों को मिलने लगे। इसके लिए बैंकों ने कृषि, लघु उद्योग, सड़क तथा जल परिवहन, खुदरा व्यापार और लघु व्यापार जैसे क्षेत्रों के लिए विशेष योजनाएं बनाई हैं।

बैंकों की जमा राशियों में निरन्तर वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप बैंकों की ऋण प्रदान करने की क्षमता में काफी विस्तार हुआ। बैंक जमा खातों की संख्या मार्च, 1968 के अंत में 16 मिलियन थी जो अब बढ़कर 175 मिलियन से अधिक है। जून, 1969 में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों में कुल जमा राशि 4646 करोड़ रुपये थी तथा इन बैंकों ने 3599 करोड़ रुपये के अग्रिम दे रखे थे जबकि कुल जमा राशि दिसम्बर 1986 के अंत तक बढ़कर 1,00,964 करोड़ रुपये हो गई तथा कुल ऋण राशि भी बढ़कर 60,551 करोड़ रुपये हो गई थी।

दिसम्बर 1989 के अंत तक सभी अनुसूचित वाणिज्यक बैंकों की बकाया जमा राशियों और ऋण राशि क्रमशः 1,62,036 करोड़ रुपये और 1,04,866 करोड़ रुपये थी।

दिसम्बर 1989 में समाप्त वर्ष के दौरान जमा राशियों की वृद्धि दर 14.3 प्रतिशत थी जबकि पिछले वर्ष की इसी अवधि में यह दर 19.2 प्रतिशत थी।

जनसंख्या समूहों के अनुसार कुल जमाराशियों को पृथक-पृथक करने पर यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण केन्द्रों की 16.6 प्रतिशत की वृद्धि दर सर्वोच्च है। इसके बाद 13.9 प्रतिशत के साथ शहरी/महानगरीय केन्द्रों तथा 13.6 प्रतिशत के साथ अर्ध-शहरी केन्द्रों का स्थान था। बैंक समूहों में बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने क्रमशः 55.5 प्रतिशत और 25.5 प्रतिशत की जमा वृद्धि दर दर्ज की। भारतीय स्टेट बैंक तथा उसके सहयोगी बैंकों और राष्ट्रीयकृत बैंकों की जमा राशियों में क्रमशः 15.6 प्रतिशत और 11.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सकल जमा राशियों में बैंक समूहों का अंश इस प्रकार था: राष्ट्रीयकृत बैंक 61.1 प्रतिशत, भारतीय स्टेट बैंक और उसके सहयोगी बैंक 27.3 प्रतिशत, विदेशी बैंक 5.1 प्रतिशत, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 2.3 प्रतिशत तथा शेष 4.2 प्रतिशत का अंश निजी क्षेत्र के बैंकों का था।

बैंक ऋण में 19.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि पिछले वर्ष 20.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। जनसंख्या समूहवार बैंक ऋण से यह स्पष्ट होता है कि शहरी/महानगरीय केन्द्रों ने 22.0 प्रतिशत की उच्चतम वृद्धि दर्ज की तथा उसके बाद 15.6 प्रतिशत और 13.1 प्रतिशत के साथ ग्रामीण और अर्ध शहरी केन्द्रों का स्थान रहा। बैंक समूहों में यह पाया गया कि 54.9 प्रतिशत के साथ 'विदेशी बैंक' प्रथम स्थान पर रहे थे तथा उसके बाद 19.9 प्रतिशत के साथ 'भारतीय स्टेट बैंक और उसके सहयोगी बैंकों' का स्थान रहा। 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक' 17.5 प्रतिशत के साथ तीसरे स्थान पर रहे। राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा 17.2 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त की गई। कुल ऋण का 55.4 प्रतिशत अंश 'राष्ट्रीयकृत बैंकों' का था जबकि 'भारतीय स्टेट बैंक और उसके सहयोगी बैंकों' का अंश 30.4 प्रतिशत का रहा। विदेशी बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और निजी क्षेत्र के अन्य बैंकों का अंश क्रमशः 7.5 प्रतिशत, 3.1 प्रतिशत और 3.6 प्रतिशत का रहा।

प्राथमिकता क्षेत्र ऋणों का कुल ऋण में अनुपात भी बढ़ा है। 1985 में बैंकों ने प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को ऋण देने के निर्धारित लक्ष्य कुल अग्रिम के 40 प्रतिशत की तुलना में 43.1 प्रतिशत ऋण दिया। पिछले दो वर्षों में सरकारी बैंकों ने प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों, कमजोर वर्गों और कृषि ऋण देने में सभी लक्ष्यों से ज्यादा उपलब्धि हासिल की। 1985 में कृषि क्षेत्र को सीधा ऋण 15.2 प्रतिशत था जबकि इसका लक्ष्य 15

प्रतिशत था। कमजोर वर्ग के लोगों को कुल अग्रिम का 10.08 प्रतिशत रहा। 1986 में सरकारी बैंकों द्वारा दिए गए कुल ऋण का 50 प्रतिशत केवल 15 प्रतिशत ऋण इन क्षेत्रों में दिया गया था।

अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों को समाज का सबसे कमजोर वर्ग माना गया है। बैंकों से कहा गया है कि वे पर्याप्त मात्रा में ऋण उपलब्ध कराकर इनकी सहायता करें। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम में भी बैंकों की भूमिका उल्लेखनीय रही है। गरीबी की रेखा से नीचे गुजर बसर करने वाले चुने हुए परिवारों को ऊपर उठाने के लिए पूंजी तथा सबसिडी और ऋण सहायता उपलब्ध कराई गई है। इस कार्यक्रम के तहत छठी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 1.5 करोड़ परिवारों की भलाई के लिए 3000 करोड़ रुपये की ऋण राशि का प्रावधान रखा गया था। 1986-87 के दौरान ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 30 लाख के लक्ष्य की तुलना में 37 लाख लोगों को ऋण दिए गए।

तालिका

वाणिज्यिक बैंकों की प्रगति

वर्ष	बैंकों की संख्या	जनसंख्या प्रति बैंक (हजार रुपये में)	अनुसूचित बैंकों में जमा (करोड़ रुपये में)	कुल ऋण राशि (करोड़ रुपये में)
1969	8,262	65	4,646	3,599
1973	15,362	37	9,165	5,492
1974	18,730	32	12,545	8,955
1976	29,220	29	15,178	11,476
1977	24,802	25	18,903	13,491
1978	28,016	23	23,313	15,694
1979	30,419	21	28,671	19,116
1980	32,202	20	33,377	22,068
1981	35,707	19	40,549	26,551
1982	39,177	17	46,128	30,180
1984	40,705	15	71,642	47,886
1986	52,500	14	10,00,964	60,551
1988	55,413	14	1,39,440	80,123
1989	57,699	13	1,62,036	1,04,866

रिज़र्व बैंक ने अपनी ऋण नीति में और भी ढील देने की घोषणा की है। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत अब 10 हजार रुपये के स्थान पर 25 हजार रुपये तक के ऋण के लिए जमानत की जरूरत नहीं होगी।

शिक्षित बेरोजगारों को रोज़गार के अवसर प्रदान करने के लिए विशेष योजनाएं चलाई जा रही हैं। शिक्षित बेरोजगार युवकों को 35 हजार रुपये का रियायती ऋण, रियायती ब्याज पर दिया जाएगा। ऋण फार्म को सरल बनाया जा रहा है ताकि ऋण लेने वाले को बैंक में दो-तीन बार से ज्यादा चक्कर नहीं लगाने पड़े।

कसौटी पर रखें तो राष्ट्रीयकृत बैंकों का व्यक्तित्व बहुत अच्छा रहा है। उधार देने में प्राथमिकता का निर्वाह करके भी बैंक हानि या वित्तीय संकट में नहीं है।

बैंक राष्ट्रीयकरण के पीछे दो मुख्य उद्देश्य रखे थे कि बैंकों के माध्यम से जनता की बचत का पैसा एकत्र किया जाए और इस पूंजी को विकास कार्यों में लगाया जाए। यह दोनों उद्देश्य पूरे हो रहे हैं। बैंक प्रमुखों को निर्देश दिए हैं कि ग्राहक सेवा और विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राहक सेवा पर विशेष जोर दिया जाए। बिना पढ़े-लिखे और ऋण लेने वाले लोगों की सुविधा और सहायता के लिये हर सम्भव प्रयत्न किया जाए। यद्यपि बैंकों की सेवा पूर्णतः संतोषजनक तो नहीं है लेकिन यह जरूर है कि बैंकों ने मुद्रा विनिमय भूमिका से हटकर सामाजिक परिवर्तन की भूमिका अवश्य निभाई है। सच तो यह है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के उपरांत देश की बैंकिंग प्रणाली ने शहरी और देहाती बैंकिंग व्यवस्था में बहुत बड़ा योगदान दिया। कृषि एवं ग्रामीण विकास में आमूल परिवर्तन हुए हैं जिससे ग्रामीणों की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों में बदलाव आया है।

16, सुवाभा नगर एक्सटेंशन-2
रामटेकरी, मन्दसौर
मध्य प्रदेश-458001

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक योजना

म. ना. भारती

आजादी के बाद जो सबसे बड़ी और पहली समस्या देश के सामने थी वह यही कि कैसे तेजी के साथ यहां के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर किया जाये। विदेशी हुकूमत तो शोषण नीति की बुनियाद पर टिकी थी इसलिए उस दौर में भारत की परंपरागत अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई और यहां के लोग हर तरह से आर्थिक-सामाजिक पिछड़ेपन का शिकार होते गए। सत्ता की बागडोर संभालने के बाद हमारे दूरदर्शी नेताओं ने देखा कि इस स्थिति को बदले बगैर एक सशक्त और गतिशील भारत की कल्पना को साकार नहीं किया जा सकता और यह भी कि योजना-बद्ध आर्थिक विकास की प्रक्रिया से भी यह स्थिति बदली जा सकती है। इसके फलस्वरूप केन्द्रीय योजना आयोग का गठन हुआ और हमारी पंचवर्षीय विकास योजनाएं अस्तित्व में आई। पहली पंचवर्षीय योजना से लेकर सातवीं पंचवर्षीय योजना तक की विकास-यात्रा का एक अपना इतिहास है और इसकी उपलब्धियों का ही परिणाम है कि दुनिया के तमाम विकासशील राष्ट्रों की अगली कतार में खड़ा भारत आज अपनी अग्रणी भूमिका निभाने में सक्षम है।

हमारी पंचवर्षीय विकास-योजनाएं केन्द्रीकृत संकल्पना के आधार पर तैयार की जाती रही हैं। इनमें पूरे देश के ढांचे को और इसके समग्र आर्थिक विकास को दृष्टि में रखा जाता है। बड़े-बड़े बांधों और बड़े-बड़े कारखानों का सम्बन्ध सिर्फ क्षेत्र-विशेष से नहीं रहता, बल्कि अनेक क्षेत्र इनसे लाभान्वित होते हैं, और अंततः पूरे देश की अर्थव्यवस्था को गतिशीलता प्राप्त होती है। बड़े-बड़े बांधों से जहां सिंचाई की सुविधा का विस्तार हुआ वहीं विद्युत-उत्पादन की क्षमता भी बढ़ी। बड़े-बड़े कारखाने मध्यम और छोटे उद्योगों के विकास में सहायक हुए। इस तरह देश में एक नई औद्योगिक संस्कृति पनपी और साथ-ही-साथ कृषि-क्षेत्र के लिए अकूत संभावनाओं के द्वार खुले।

यह सही है कि पहले हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए सुदृढ़ आधार के निर्माण और बुनियादी संरचना को टिकाऊ बनाने पर विशेष बल दिया गया, लेकिन इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि उन दिनों यही समय की मांग थी। इस तरह की योजनाओं के लिए केन्द्रीयकृत प्रणाली हर तरह से उपयुक्त सिद्ध हुई, किन्तु क्रमशः यह अनुभव किया गया कि समन्वित विकास के लिए विकेन्द्रीकृत आयोजना की भी बड़ी ज़रूरत है। केन्द्रीकृत आयोजना के परिणामों तथा छठे-सातवें दशकों के दौरान विकासात्मक कार्यों के कार्यान्वयन के क्रम में जो मोहभंग की स्थिति पैदा हुई थी, उसमें विकेन्द्रीकरण के प्रति जागरुकता पैदा होना स्वाभविक था।

विकेन्द्रीकृत आयोजना के विचार की पृष्ठभूमि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतिम चरण में ही बनने लगी थी, क्योंकि उसके लिए कारण मौजूद थे। तृतीय पंचवर्षीय योजना में जिला और ब्लाक स्तरों पर ग्रामीण विकास की योजनाएं तैयार करने के लिए एक विशेष पद्धति की रूपरेखा निर्धारित की गई। उसमें यह स्वीकार किया गया है कि आधार-स्तर पर योजना तैयार होने से राष्ट्रीय योजना की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। लेकिन उस पंचवर्षीय योजना के कार्यान्वयन के दौरान जिन परिणामों की उम्मीद की जा रही थी, वे पूरी तरह से सामने नहीं आए। इसका प्रमुख कारण संभवतः यह रहा कि राज्य स्तर पर आयोजना के लिए पर्याप्त परिचालन-तंत्र (मशीनरी) और विशेषज्ञता का प्रायः अभाव था। अतः उस दौर में विकेन्द्रीकरण की गति बहुत ही धीमी रही।

इस स्थिति से उबरने के लिए और विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को तेज करने के लिए राष्ट्रीय योजना आयोग ने 1972 में एक विशेष योजना के तहत राज्य योजना बोर्डों अर्थात राज्य योजना आयोगों का गठन किया। विकेन्द्रीकरण की दिशा में उठाया गया यह एक आवश्यक कदम था, जिसका उद्देश्य राज्य स्तर पर परिचालन-तंत्र को सुदृढ़ बनाना था ताकि इस प्रक्रिया को तेजी से आगे बढ़ाया जा सके।

आयोजना के विकेन्द्रीकरण के संदर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भारत मूलतः गांवों का देश है। यहां के दो-तिहाई से ज्यादा लोग गांवों में रहते हैं। वे आर्थिक दृष्टि से

पिछड़े हुए हैं। उनमें अशिक्षा, अंधविश्वास आदि सामाजिक बुराइयां घर किए हुए हैं। मुख्य रूप से उनका जीवन कृषि पर या छोटे-मोटे धंधों पर आधारित है। लेकिन उनके पास संसाधनों की कमी है तथा खेती के लिए भी वे मौसम की मेहरबानी की बाट जोहते रहते हैं। उनके जीवन को स्थानीय परिस्थितियां ही प्रभावित और नियंत्रित करती हैं तथा उनकी अपनी समस्याएं हैं। केन्द्रीकृत योजना की रोशनी प्रायः उन तक पहुंच नहीं पाती, इसीलिए यह सोचा जाने लगा कि विकेन्द्रीकृत योजना ही उन्हें समुचित लाभ पहुंचा सकती है। विकेन्द्रीकृत आयोजना प्रणाली के अंतर्गत स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर योजना बनाना तथा स्थानीय संसाधनों का बेहतर उपयोग संभव हो पाता है। कृषि विकास योजना में स्थानीय तत्वों की बहुलता से विकेन्द्रीकरण को समर्थन मिलता है। गांव-गांव में और यहां तक कि खेत-खेत तक में जल, वायु, मिट्टी और जल-संसाधन आदि में काफी विभिन्नता पाई जाने वाली विभिन्नताओं को दृष्टि में रख पाना तभी संभव होता है, जब कि योजनाएं बिल्कुल नीचे से यानी ग्रास रूट स्तर से शुरू की जाती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसके लिए विकेन्द्रीकृत आयोजना की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध होती है।

विकास की विकेन्द्रीकृत आयोजना का अर्थ है कि विभिन्न स्तरों पर—राज्य, जिला, ब्लाक और ग्राम-योजनाएं तैयार की जाएं और उन्हें कार्यान्वित किया जाये। ग्रास रूट स्तर से अर्थात् गांव के पिछड़े वर्ग से योजना शुरू करने की बात इसलिए भी सामने आती है कि वस्तुतः यही सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई है, किन्तु विशेषज्ञों के अनुसार ग्राम इतनी छोटी इकाई है कि इसे आयोजना की इकाई के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। गांव की बहुत-सी समस्याएं बाहरी होती हैं, इसलिए उनके समाधान भी बाहर ही ढूंढ़ने होंगे। दरअसल आयोजना की इकाई इतनी छोटी होनी चाहिए कि लोग उसमें प्रभावी ढंग से अपनी सहभागितापूर्ण भूमिका निभा सकें तथा बड़ी भी इतनी हो कि कार्यक्षमता और आर्थिक उपलब्धि को ठीक से सुनिश्चित किया जा सके। इस दृष्टि से आम सहमति इस बात पर है कि जिले को समुचित इकाई माना जाये।

जिला स्तर पर विकास योजनाओं की जब बात आती है तो इनमें बैंक-व्यवस्था के महत्वपूर्ण योगदान की चर्चा भी प्रासंगिक हो उठती है। बैंक न हों तो वित्तीय साधन जुटे कहां से और उनके समुचित वितरण की व्यवस्था पर नियंत्रण कैसे रहे। वाणिज्यक बैंकों के राष्ट्रीयकरण से पहले कृषि क्षेत्र के लिए ऋणों के आयोजन पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था। बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार करने और ऋण वितरण प्रणाली में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से भारत सरकार ने दिसम्बर, 1967 में बैंकों पर 'सामाजिक नियंत्रण' की योजना का सूत्रपात किया। इसी सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा के परिणाम हैं—ऋण आयोजना प्रणाली और अग्रणी बैंक योजना। स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर देश में ऋण एवं बैंकिंग के विकास क्षेत्र की संकल्पना को अपनाए जाने की सिफारिश सर्वप्रथम राष्ट्रीय ऋण परिषद के एक अध्ययन दल ने 1969 में की थी, जिसके अध्ययन का विषय था-"सामाजिक उद्देश्यों को लागू करने के लिए संगठनात्मक ढांचा"। इसी के फलस्वरुप जिला ऋण योजना अस्तित्व में आई। विकेन्द्रीकृत ऋण आयोजना के संदर्भ में इसे पहला प्रयास माना जा सकता है।

भारतीय रिजर्व बैंक ने फरवरी, 1982 में जिला ऋण योजना के तीसरे दौर के लिए नए मार्ग निर्देश जारी किए और उसी साल जुलाई में संसद द्वारा पारित एक विधेयक के अंतर्गत राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण बैंक का गठन हुआ, जिसे संक्षेप में 'नाबार्ड' (नैशनल बैंक फार एग्रीकल्चर एण्ड रूरल डेवलपमेंट) भी कहा जाता है। एक अरब रुपये की पूंजी से खड़ा किया गया यह विकास बैंक भारत सरकार और रिजर्व बैंक की संयुक्त साझेदारी पर टिका है। इसका उद्देश्य कृषि और ग्रामीण विकास की गतिविधियों को बढ़ावा देना है जिनमें गैर-कृषि विकास की गतिविधियां भी शामिल हैं। यह बैंक इस तरह के कार्यों के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों, वाणिज्यक बैंकों, राज्य भूमि विकास बैंकों, राज्य सहकारी बैंकों तथा अन्य मान्य वित्तीय संस्थाओं के जरिए अल्प अवधि, मध्य अवधि और दीर्घ अवधि के ऋण उपलब्ध कराता है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का गठन पिछड़े क्षेत्रों में ग्रामीण ऋण की लगातार बढ़ती आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया गया है। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक इन बैंकों की कार्यप्रणाली को सुव्यवस्थित रखने तथा इन्हें अधिकाधिक सक्षम बनाने की दिशा में सदा सचेष्ट रहता है। 'नाबार्ड' की पिछली वित्तीय रिपोर्ट के अनुसार देशभर में फैले क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या 196 है। इन बैंकों के मुख्यालय जिला-केन्द्रों में हैं। ये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अपनी 13,586 शाखाओं के माध्यम से 365 जिलों में कार्यरत हैं तथा इनकी शाखा-विस्तार योजना भी समय के साथ आगे बढ़ती रहती है। 'नाबार्ड' के सहयोग से ग्रामीण वितरण प्रणाली को मजबूत बनाने के लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में आवश्यक प्रशिक्षित स्टाफ की नियुक्ति की गई है। समय—समय पर नाबार्ड इनके कार्यों और गतिविधियों का निरीक्षण और मूल्यांकन भी करता

रहता है।

इस संदर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का वास्तविक काम एक खास सीमित क्षेत्र के भीतर केवल कमजोर वर्गों के लोगों की ऋण-आवश्यकताओं को पूरा करना है। कृषि कार्यों के अलावा छोटे-मोटे कुटीर उद्योगों और पेशागत व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिए ये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कमजोर तबके के लोगों को आसान ब्याज पर ऋण-सहायता उपलब्ध करते हैं। कमजोर तबके के हितों से जुड़े होने के कारण इन बैंकों के लिए लाभ कमाने के अवसर काफी सीमित होते हैं। पिछले वर्ष कुल 196 बैंकों में से लगभग चौथाई क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ही ऐसे निकले जो लाभ अर्जित कर पाए थे। अंतिम ऋण-वितरण दरों में कमी और जमा राशियों पर ब्याज दरों में वृद्धि का प्रावधान होने से लाभगत मार्जिन बहुत घट जाता है। यह स्थिति क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के समुचित विकास की दृष्टि से अनुकूल है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वारा किए गए एक आकलन के अनुसार 1987 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने प्रति एक सौ रुपये के व्यवसाय में सकल मुनाफे के तौर पर सिर्फ तीन रुपये 80 पैसे अर्जित किए थे। जाहिर है कि यह मुनाफा स्थापना-लागत को भी पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं था। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक ने स्वीकार किया है कि यह स्थिति उत्साहप्रद नहीं है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की इस स्थिति के लिए 'नाबार्ड' ने जो कारण गिनाए हैं उनमें प्रमुख हैं:

1. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा शाखा-विस्तार के कार्यक्रम में जल्दबाजी दिखाना। इससे प्रतिकूल वित्तीय परिणाम सामने आते हैं।

2. ब्याज कम मिलने के कारण निश्चित व्यय और आय के अनुपात में मार्जिन बहुत ही कम होता है।

3. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक राज्य सरकार के कर्मचारियों की वेतन-संरचना से जुड़े होते हैं, इसलिए इन्हें समय-समय पर अपने कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि करनी पड़ती है। इस तरह हर वेतन-वृद्धि के साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के खर्च में तो इजाफा होता रहता है, लेकिन आय का अनुपात पूर्ववत रहता है।

4. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का कार्यक्षेत्र कमजोर वर्गों तक सीमित होने के कारण उधार लेने वाले भी उसी वर्ग के होते हैं, अतः इनका व्यवसायिक स्तर अन्य बैंकों की तुलना में काफी निम्न होता है। न-लाभ-न-हानि के स्तर तक पहुंचने में इन्हें अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।

5. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का खाता-व्यवसाय कम होता है और सेवा-लागत अधिक होती है। यह भी इन बैंकों की वर्तमान स्थिति के लिए जिम्मेदार है।

6. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाओं में अप्रयुक्त नकद राशि रखने की बाध्यता होती है, क्योंकि जरूरत पड़ने पर तुरन्त मुख्यालय पहुंचा नहीं जा सकता।

इन बातों से स्पष्ट है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को जितने लाभकारी ढंग से चलना चाहिए, नहीं चल पा रहे हैं। इस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

बिल्कुल निचले स्तर से या ग्रास रूट स्तर से विकास की प्रक्रिया को जोड़ने के लिए ये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक जिस सीमा तक अपरिहार्य हैं, प्रायः उसी सीमा तक कठिनाइयों से ग्रस्त भी हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक समाज के उस तबके की सेवा के लिए समर्पित हैं जो अभी हाशिए पर हैं, तथा जिन्हें ऊपर उठाने की जरूरत है। यह तबका आमतौर पर राष्ट्रपिता गांधी के शब्दों में अंत्यजों का है, समाज के सबसे निचले स्तर के पिछड़े हुए लोगों का है। इस तबके को बदहाली से उभारे बिना और पूरी तरह से आगे बढ़ाए बिना विकासशील भारत की अवधारणा न तो फलीभूत हो सकती है और न ही अपनी अपेक्षित अर्थ-गरिमा को प्राप्त कर सकती है। वर्तमान स्थिति में आवश्यकता इस बात की है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक योजना के कार्यान्वयन को सुचारु रूप देने के लिए राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, प्रायोजक बैंक और राज्य सरकारें विशेष रूप से सचेष्ट रहें। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अपेक्षित वित्तीय संसाधनों या अन्य साधनों की कमी इनके मार्ग में रुकावटें न खड़ी करें और ये अपनी पूरी क्षमता के साथ विकास कार्य में अपना समुचित योगदान करते रहें।

113-बी/पाकेट-बी, दिलशाद गार्डन,
दिल्ली-110095

बैंक राष्ट्रीयकरण के दो दशक—समीक्षा

अशोक नागर

19 जुलाई 1989 को भारत में बैंक राष्ट्रीयकरण के बीस वर्ष पूरे हुए। पिछले दो दशकों में बैंकिंग नीतियों, कार्यक्रमों तथा परिचालनों ने 'एक बृहत्तर सामाजिक उद्देश्य' तथा 'राष्ट्रीय प्राथमिकताओं एवं लक्ष्यों की पूर्ति' के लिए बैंकिंग तंत्र का पुनर्विन्यास किया है तथा राष्ट्रीयकरण के अधिक व्यापक लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप, बैंकिंग तंत्र में परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों ही तरह के संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं जैसे कि, शाखाओं का, विशेषतः ग्रामीण तथा अर्धशहरी क्षेत्रों में, भारी विस्तार, वित्तीय बचतों का पर्याप्त संग्रहण, अपेक्षाकृत कुछ बड़े तथा मझौले उद्योग एवं लघु उद्योगों, लघु व्यापारी, व्यावसायियों तथा फुटकर व्यापार से सम्बन्धित उधारकर्ताओं की बड़ी संख्या की ओर उन्मुख करना जिसमें समाज के अधिसंख्य कमजोर वर्ग भी शामिल हैं तथा जिनको प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र की श्रेणी में रखा गया है, समाज के औद्योगिक एवं आर्थिक आधार को विस्तृत करने के लिए उद्यमियों के एक नये वर्ग का संवर्धन करना तथा बैंक प्रबन्ध एवं स्टाफ का व्यावसायिकीकरण।

बैंक कार्यालयों की कुल संख्या जो जून 1969 में लगभग 8,262 थी, बढ़कर जून 1989 में लगभग 57,197 हो गयी जिसमें ग्रामीण शाखाओं की संख्या 1,860 (अथवा कुल के 22.5 प्रतिशत) से बढ़कर 32,577 (57.0 प्रतिशत) हो गयी। जहां तक क्षेत्रवार स्थिति का प्रश्न है, पिछड़े हुए उत्तर-पूर्वी तथा मध्यवर्ती क्षेत्रों के बैंक कार्यालयों की कुल संख्या में वृद्धि हुई है और यह संख्या 25 प्रतिशत से बढ़कर 40 प्रतिशत हो गयी। प्रति बैंक कार्यालय द्वारा सेवित जनसंख्या के औसत आकार में कमी आयी और वह जून 1969 के 65,000 व्यक्ति प्रति शाखा से घटकर जून 1989 में 12,000 व्यक्ति प्रति शाखा रह गया है। जमा खातों की संख्या, जो कि वर्ष 1969 में 18 मिलियन से थोड़ी अधिक थी, बढ़कर दिसम्बर 1986 में 246.3 मिलियन हो गयी। अर्थव्यवस्था में बैंकिंग तंत्र की पैठ का पता इस बात से लगता है कि बैंक जमा खातों की अनुमानित औसत संख्या अब प्रति परिवार एक से अधिक है। ऋण खातों की संख्या जो कि वर्ष 1969 में 1.1 मिलियन थी, बढ़कर जून 1988 में 46.9 मिलियन हो गयी। दूसरी बात यह है कि, वाणिज्यिक बैंकों की जमा राशियां घरेलू क्षेत्र की वित्तीय बचतों के मुख्य स्रोत के रूप में सामने आयी हैं। वाणिज्यिक बैंकों की कुल जमा राशियां जून 1969 के 4,646 करोड़ रुपये से बढ़कर जून 1989 में 1,47,000 करोड़ रुपये हो गयी तथा राष्ट्रीय आय में उनका हिस्सा 15 प्रतिशत से बढ़कर 49 प्रतिशत हो गया। तीसरी बात यह है कि, जहां तक ऋण के निवेश का सम्बन्ध है, समस्त अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के कुल बैंक ऋण में निर्धारित प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों का हिस्सा जो कि जून 1969 में लगभग 14 प्रतिशत था, बढ़कर जून 1989 में 42 प्रतिशत से ऊपर हो गया। प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में बैंक ऋण का एक बहुत बड़ा हिस्सा अनुसूचित जातियों और जनजातियों, खेतिहर मजदूरों, बटाईदारों, काश्तकारों तथा शहरी गरीबों—जैसे समाज के कमजोर वर्गों को गया है।

शाखा बैंकिंग के तीव्र विस्तार, बैंकिंग कारोबार में आयी क्रांति जैसी स्थिति तथा अधिकार एवं नियंत्रण की सीमाओं में विस्तार के कारण बैंकिंग तंत्र पर समग्रतः अत्यधिक तनाव एवं दबाव पड़ा है। इन प्रतिकूल प्रभावों से निपटने के लिए हाल के वर्षों में समेकन (कन्सोलिडेशन) की प्रक्रिया पर जोर दिया जाता रहा है। इसके साथ ही तीव्र गति से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के प्रति, जो कि विशेषतः उद्योग, विदेशी व्यापार एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में आधुनिकीकरण एवं उदारीकरण के दौर से गुजर रही है, बैंकिंग उद्योग सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करता रहता है। मौद्रिक एवं ऋण नीतियों में भी इस बात का प्रयास किया गया है कि बन्धनों को ढीला किया जाए, लचीलापन तथा दक्षता प्रदान की जाए तथा विशाखन एवं नवीनीकरण को बढ़ावा दिया जाए। नयी संस्थाओं एवं लिखतों को बढ़ावा देना इन नीतियों का मुख्य पक्ष रहा है।

ऋण आस्तियों की गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता पहले से ही महसूस की जा रही है। ऋण खातों से सम्बन्धित स्वास्थ्यकूट आंकड़े, जो इस समय उपलब्ध हैं, इस तरह का सुधार लाने में उपयोगी सिद्ध होने चाहिए। इस समस्या का एक अच्छा समाधान यह होगा कि ऋण मूल्यांकन तथा निगरानी में सुधार लाया जाए एवं प्रारम्भिक रुग्णता के मामलों में समय से उपचारात्मक कार्रवाई की जाए।

सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण, जिसका लक्ष्य ग्रामीण ऋणदान प्रणाली में सुधार लाना है, 1 अप्रैल 1989 से शुरू हो गया है। इस कार्यक्रम का लक्ष्य यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन उन्मुख ऋण प्रदान किया जाए ताकि और अधिक रोजगार तथा आय की प्राप्ति हो। सेवा क्षेत्र में योजनाएं पिछले वर्ष के मुकाबले वर्ष 1989-90 के दौरान अधिक ऋण वितरण का लक्ष्य प्रदर्शित करती हैं। बैंकों के शीर्ष प्रबंधकों को तथा उनके नियंत्रक तंत्र को यह सूचित किया गया है कि वे उक्त कार्यक्रम की बारीकी से निगरानी करें ताकि सभी शाखाओं द्वारा योजनाओं का सफल कार्यान्वयन सुनिश्चित किया जा सके।

बैंकों की लाभप्रदता पर दबाव मुख्यतः रूग्ण अथवा अव्यवस्थित औद्योगिक इकाइयों के अनियमित खातों के कारण एवं कृषि तथा अन्य प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र से सम्बन्धित बकाया राशियों की असंतोषजनक वसूली के कारण है। जहां तक प्रथम श्रेणी का संबंध है, इस बात की आवश्यकता है कि बैंकों के दावों को लागू करने के लिए कानूनी प्रक्रियाओं को और तेज तथा प्रभावी किया जाए। उस काम के लिए विशिष्ट न्यायाधिकरण की स्थापना की आवश्यकता हो सकती है। कृषि तथा अन्य प्राथमिकता क्षेत्र से संबंधित अग्रिमों की देय राशियों के संबंध में यह आवश्यक है कि बैंक अपनी निधियों के पुनर्निवेश के लिए अपने प्रयासों में तेजी लाएं। इसके साथ ही, यह सुनिश्चित किया जाना भी आवश्यक है कि वाणिज्यिक तथा सहकारी बैंकों की बकाया राशियों की वसूली का सामान्य वातावरण नष्ट न हो। इस प्रयोजन के लिए भारतीय रिजर्व बैंक तथा नाबार्ड इस बात के लिए उपाय करते रहे हैं कि राज्य सहकारी बैंकों का वित्तपोषण उनके द्वारा ब्याज दर तथा ऋण अनुशासन संबंधी अन्य निर्धारित शर्तों के आधार पर किया जाए।

बैंकिंग तंत्र के समेकन पर और अधिक जोर दिया जा रहा है। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा तैयार की गयी व्यापक कार्य-योजनाओं के माध्यम से इस लक्ष्य की प्राप्ति की जानी है। बैंकों के प्रबंधात्मक ढांचे को सुदृढ़ बनाकर, आंतरिक पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण प्रणाली को विकसित करके, मानव संसाधन विकास के लिए प्रशिक्षण की गुणवत्ता तथा क्षमता में वृद्धि करके, ग्राहक सेवा तथा हाउस कीपिंग में सुधार करके, अच्छे ऋण प्रबंधन, उच्चतर उत्पादकता, खर्च में मितव्ययता बरतकर तथा बैंक की देय राशियों की वसूली करके तथा चरणबद्ध रूप में नयी तकनीक लागू करके बैंकों की परिचालनात्मक क्षमता में सुधार लाना इन कार्य योजनाओं का उद्देश्य है। यद्यपि इन प्रयासों के परिणाम सामने आ रहे हैं, तथापि और अधिक सुधार की काफी गुंजाइश है। घाटे में रहने वाली शाखाओं की संख्या कम की जानी है। यद्यपि ग्राहक सेवा में सुधार हुआ है, फिर भी इसका निरंतर ध्यान बनाये रखना है।

बैंकों के पर्यवेक्षण के लिए समय-समय पर उनका निरीक्षण किये जाने के मुख्य उपाय के अलावा कुछ अन्य तरीके भी विकसित किये गये हैं ताकि उत्पन्न परिस्थितियों से निपटा जा सके। बैंकों के लिए विवेकपूर्ण मानदंड निर्धारित करने के लिए उपाय किये गये हैं, जैसे कि अरक्षितता जोखिम सीमाएं तथा अलाभकर ऋणों की पहचान। ऐसा करने का प्रयोजन यह है कि ऐसे ऋणों से संबंधित ब्याज को आय से निकाला जा सके। निधि आधारित तथा गैर निधि आधारित दोनों प्रकार की अरक्षितता के जोखिम से संबंधित पूंजी की उपयुक्त पर्याप्तता विषयक मानदंड लागू करने के प्रस्ताव विचाराधीन हैं। भारत में पहली बार कारोबार शुरू करने वाले विदेशी बैंकों के लिए भी एक न्यूनतम शुरुआती पूंजी प्रारम्भ की गयी है।

गैर बैंकिंग संस्थाओं से उत्पन्न कड़ी प्रतिस्पर्धा से भी बैंकों की जमा राशियों के प्रभावित होने की संभावना है तथा इसके कारण निधियों के प्रबन्ध पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होगी। इसमें प्रारक्षित आस्तियों से संबंधित अर्जन को अधिकतम करना ही नहीं बल्कि आस्तियों के संविभाग की संरचना के साथ जमा राशियों की परिपक्वता के स्वरूप का अच्छी तरह ताल-मेल बैठाने की बात भी निहित है। पुनश्च, बैंकों को अपने विकासमान निधीतर कारोबार को दक्षतापूर्वक करने के लिए आवश्यक कार्य कुशलता विकसित करने की भी आवश्यकता होगी।

कुछ समय से बैंक प्रत्यक्ष रूप में अथवा अपनी सहायक संस्थाएं स्थापित करके, पट्टेदारी व्यापारी बैंकिंग, आवास तथा पारस्परिक निधियों—जैसे संबंधित क्षेत्रों में अपने कामों के विशाखन तथा नवीनीकरण का प्रयास करते रहे हैं। गैर-बैंकिंग संस्थाओं के कार्य में वृद्धि हो रही है तथा बैंकों एवं बैंकतर संस्थाओं का अंतर घट सकता है एवं बैंकों तथा उनकी सहयोगी संस्थाओं के लिए यह आवश्यक है कि वे उत्पन्न बाजार संबंधी परिस्थितियों का सामना करने के लिए अपेक्षित कुशलता तथा विशेषज्ञता प्राप्त करें। बैंकों की सहयोगी संस्थाओं तथा बैंकेतर वित्तीय संस्थाओं के लिए यह आवश्यक है कि वे विवेकपूर्ण मानदंडों का पालन करें ताकि सम्पूर्ण वित्तीय क्षेत्र का विकास ठीक तरह से हो सके।

द्वारा, डा. वाई. एस. भण्डारी,
सुखाड़िया नगर (हीराबाग कालोनी)
विश्वविद्यालय मार्ग, उदयपुर (राज.) 313001

कालजयी डा. आम्बेडकर

देवेन्द्र कुमार बैसन्तरी

डा. भीमराव रामजी आम्बेडकर को निर्वाण प्राप्त किये हुए लगभग 34 वर्ष हो गये। पर लगता है, वह सूर्य अस्त नहीं हुआ है बल्कि दिनों-दिन उसका प्रकाश अधिक प्रखर तथा चतुर्दिक फैलता जा रहा है।

केन्द्र की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने डा. बाबा साहेब का आदमकद चित्र संसद के केन्द्रीय कक्ष में तत्परतापूर्वक लगा दिया। उन्हें भारतरत्न की पदवी भी दे दी गयी। पर सबसे बड़ी बात यह हुई कि 14 अप्रैल को सरकार की ओर से उनकी 99वीं जयन्ती मनाई गई। उस दिन को कार्यालयों में सवेतन छुट्टी रखी गयी और पूरे वर्ष को सामाजिक न्याय, जिसके लिए डा. आम्बेडकर जिये और मरे, मनाने की बात भारत के प्रधानमंत्री श्री वी. पी. सिंह की ओर से कही गई। मध्य प्रदेश की सरकार ने बाबा साहेब आम्बेडकर राष्ट्रीय संस्थान स्थापित किया और महू में उसे स्थापित करने के लिए 50 एकड़ जमीन दी। महाराष्ट्र सरकार उनकी पुस्तकों, लेखों और भाषणों को छाप रही है। इस माला में 8 पुस्तकें छप चुकी हैं, कुछ प्रेस में हैं और कुछ अन्य स्तरों पर।

आखिर यह कोलाहल क्यों? यह तथ्य है कि डा. आम्बेडकर की इस वर्ष जन्मशती मनायी जा रही है। पर इसी के साथ जुड़ा हुआ दूसरा प्रश्न है कि जन्मशती मनायी ही क्यों जा रही है? इस देश में अरबों पैदा हुए पर कितनों को यह श्रेय प्राप्त है? इसके साथ राजनीति भी घुली-मिली है। पर करोड़ों पढ़े-अनपढ़, भूखे-नंगे जो डा. आम्बेडकर के नाम के पीछे खड़े हैं उन्हें इससे क्या लेना-देना है? इसका तो मुख्य कारण डा. बाबा साहेब का इन दलितों, शोषितों के प्रति सर्मपण-जीवन पर्यन्त इनके लिए संघर्ष है।

विदेशों में शिक्षा प्राप्त कर भारत लौटने के तुरन्त बाद से ही वे दलितों को जागृत और संगठित करने के काम में लग गये। नागरिक अधिकारों और सामाजिक समानता के लिए अनेक आन्दोलनों और अभियानों का नेतृत्व किया जिनमें महाड़ के चौधर तालाब से पानी पीने, नासिक के कालाराम मंदिर, पुणे के पार्वती मंदिर और अमरावती की अम्बादेवी मंदिर में अछूतों के प्रवेश के लिए किये गये सत्याग्रह सम्मिलित हैं। 1917 में डा. आम्बेडकर भारत आये भारत सचिव श्री मंटेग्यू से संविधान में दलितों के अधिकार के लिए मिले। उन्होंने 1918 में साउथ बोरा मताधिकार समिति, 1928 में साइमन कमीशन और 1930-32 के दौरान लंदन में गोलमेज सम्मेलन में दलितों के राजनीतिक अधिकारों के लिए जीतोड़ परिश्रम किया। उनके इन प्रयासों का ही फल है कि कठोर विरोधों के बीच, दलितों के लिए विधान सभाओं में आरक्षण प्राप्त हो गये।

पर राज्य की सेवाओं, विशेषकर केन्द्रीय सेवाओं में दलितों के लिए आरक्षण नहीं मिले थे यद्यपि साइमन कमीशन और गोलमेज सम्मेलन में डा. आम्बेडकर ने इसकी जोरदार मांग की थी।

1942 में जब डा. आम्बेडकर वायसराय की कार्यकारिणी परिषद के सदस्य नियुक्त हुए तो उसी वर्ष उन्होंने तत्कालीन वायसराय को एक मेमो दिया जिसमें अन्य मांगों के साथ प्रशासन में दलितों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में पद आरक्षित करने की मांग की गयी थी। उन्होंने उसमें वायसराय को बताया था कि 1942 में आई. सी. एस. में 1056 में केवल एक दलित था। अन्य केन्द्रीय सेवाओं में दलितों की स्थिति बेहतर नहीं थी। डा. आम्बेडकर ने मांग की कि अनुसूचित जाति को इस काम के लिए भी अल्पमत माना जाये क्योंकि कम्युनल अवार्ड में अन्य के साथ ये भी सम्मिलित किये गये थे। अच्छूतों की भर्ती में तेजी लाने के लिए उन्होंने यह भी मांग की। जनसंख्या के अनुपात में इनके लिए पद आरक्षित हों, यही नहीं सेवा के लिये निर्धारित निम्नतम आयु में इनको तीन वर्ष की छूट हो। परीक्षा फीस एक-चौथाई निर्धारित की जाये और नियम के क्रियान्वयन पर नजर रखने के लिए एक अनुसूचित जाति विशेष अधिकारी की नियुक्ति की जाये। डा. आम्बेडकर ने यह भी मांग की कि संघ सेवा आयोग में दलित जाति का एक सदस्य रखा जाये।

इस मेमों के तुरन्त बाद 1943 में अनुसूचित जातियों के लिये केन्द्रीय सेवाओं में 8-2/3 प्रतिशत पद आरक्षित कर दिये गये। डा. आम्बेडकर के वायसराय की कार्यकारी परिषद् से 1946 में हटने के पूर्व इस कोटे को बढ़ा कर 12½ प्रतिशत कर दिया गया। यह कोटा कुल आबादी में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के लगभग बराबर है।

भारतीय संविधान के निर्माण में डा. आम्बेडकर पूरी तरह स्वतंत्र नहीं थे। संवैधानिक सिद्धान्तों का निर्णय कांग्रेस आला

कमान करता था और डा. आम्बेडकर अपने सहयोगियों की सहायता से उन्हें अमली जामा पहनाते थे। यदि संविधान बनाने की उन्हें पूरी छूट होती तो शायद यह दलितों के अधिक पक्ष में होता। फिर भी संविधान में अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए वे जो प्रावधान कर सके, वे निम्न प्रकार हैं:

अनुच्छेद 330 के अन्तर्गत लोक सभा में और अनुच्छेद 332 में राज्य विधान सभाओं के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में पद आरक्षित किये गये हैं। अनुच्छेद 335 में व्यवस्था है कि राजकीय सेवाओं में भर्ती करते समय, प्रशासन की कुशलता को बिना आंच पहुंचाये, इन जातियों के दावों को ध्यान में रखना होगा। अनुच्छेद 16 (4) में प्रावधान है कि जिन पिछड़े वर्गों का प्रशासन में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है उनके लिए राज्य को आरक्षण करने का पूरा अधिकार है। अनुच्छेद 15 (4) में कहा गया है कि अनुसूचित जाति/जनजाति या सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े किसी वर्ग की उन्नति के लिए विशेष व्यवस्था करने से राज्य को रोका नहीं जा सकता। अनुच्छेद 46 में बताया गया है कि दुर्बल वर्ग खास कर अनुसूचित जाति/जनजाति की शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों को बढ़ावा देने के लिए राज्य विशेष सावधानी से काम लेगा।

अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया और किसी भी रूप में उसके व्यवहार को दंडित करार दिया गया है। अनुच्छेद 15 के अन्तर्गत किसी को किसी दुकान, सार्वजनिक उपहार गृह, मनोरंजन के स्थान तथा होटल पर जाने या कुआं, तालाब, सड़क या स्नानघाट के उपयोग का धर्म, नस्ल, जाति या लिंग के आधार पर भेदभाव वर्जित है। इन्हीं आधारों पर सहायता प्राप्त किसी शैक्षणिक संस्था में किसी को प्रवेश देने से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा एक विशेष अधिकारी को नियुक्त करने की व्यवस्था है। उसका कर्त्तव्य होगा कि वह जांच करे और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे कि अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लिए जो 'शेफगार्ड' रखे गये हैं उनको किस प्रकार कार्यान्वित किया जा रहा है। राष्ट्रपति उसके प्रतिवेदनों को सदन में विचारार्थ रखवायेंगे।

डा. आम्बेडकर ने अछूतों के लिए ही संघर्ष किया हो ऐसी बात नहीं। वे सभी शोषित वर्गों—किसान, मजदूर तथा महिलाओं के हितों के लिए भी बराबर जूझते रहे। जब संविधान बन रहा था, वे दलितों के लिए प्रत्येक मंच और स्तर से संघर्ष किये, पर जब वह एक मोड़ पर आकर रुक गया, तो अन्य तबकों के लिए संघर्षरत हो गये। 1936 में डा. आम्बेडकर ने स्वतंत्र मजदूर दल का गठन किया। दल बम्बई विधान सभा की 15 सीटें, 13 आरक्षित और 2 जनरल को जिताकर मुख्य विरोधी दल के रूप में उभरा। जब 1950 का भारतीय संविधान बन कर लागू हो गया तो उन्होंने शेडूल्ड कास्ट फेडरेशन को यह कह कर भंग कर दिया कि उससे मेहनतकश विभिन्न खेमों में बंट गये हैं।

किसान नेता

डा. बाबा साहेब भारत के प्रथम विधायक थे जिन्होंने 17 सितम्बर, 1937 में बम्बई विधान सभा में खोटी उन्मूलन विधेयक पेश किया। खोटी एक प्रकार की जमींदारी प्रथा थी जो महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र में प्रचलित थी। विधेयक में खोटी के स्थान पर रैयतवारी प्रथा जारी करने की बात कही गयी थी। खोटी का मुआवजा देने का प्रावधान था। तत्कालीन बम्बई कांग्रेसी सरकार विधेयक के विरोध में थी।

विधेयक पेश करने के बाद डा. आम्बेडकर महाराष्ट्र के कोलाबा, थाना रत्नागिरी तथा नासिक जिलों का उसके प्रावधानों से जनता को अवगत कराने के लिए बार-बार दौरा किया। 1938 में बम्बई में एक विशाल सभा का आयोजन हुआ। सभा में यह मांगपत्र स्वीकृत हुआ जो मुख्यमंत्री को दिया गया। मुख्य मांगे यह थीं—(1) खेतिहर मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी शीघ्र लागू की जाये; (2) किसानों का बकाया लगान माफ किया जाये क्योंकि जमींदारों का बकाया राजस्व माफ हो गया है; (3) खोटी, ईनामदारी और हानिप्रद जमींदार प्रथा तुरन्त समाप्त की जाये; तथा (4) छोटे किसानों की सिंचाई रेट को आधा किया जाये। उक्त अवसर पर डा. आम्बेडकर ने एक जोरदार भाषण किया जिसमें कहा कि श्रमिकों की गरीबी का मुख्य कारण शोषकों की अमीरी है। उन्होंने उपस्थित लोगों से जाति और धर्म से परे संगठन बनाने और विधान सभाओं में अपने सही प्रतिनिधि भेजने को कहा।

शेडूल्ड कास्ट्स फेडरेशन की ओर से 1947 में डा. आम्बेडकर ने संविधान सभा के लिए एक मेमो प्रस्तुत किया था। बाद में स्टेट एंड मैनेरिटिज शीर्षक से वह प्रकाशित हुआ। उसमें अन्य मांगों के साथ राष्ट्र की कृषि योग्य भूमि को राज्य के स्वामित्व में रखने की बात थी। राज्य उचित माप के प्लाट काटकर खेतिहरों को दे और आवश्यक पूंजी और कृषि के औजार उन्हें मुहैया करे। पर उन पर खेती सामूहिक ढंग से हो। 'नवयुग' में अप्रैल, 1947 में डा. आम्बेडकर और अमृत डांगे के बीच हुई बातचीत की 'रिपोर्ट' छपी थी। उसमें भी डा. आम्बेडकर ने रूस में प्रचलित सामूहिक खेती का समर्थन यह

कहते हुए किया था कि सबको देने के लिए पर्याप्त जमीन कहां है। डा. आम्बेडकर ने 1918 में छपे अपने एक शोध प्रबंध में जोत के छोटे टुकड़ों में विभाजित होने के कारणों और उनके चक बनाने के विभिन्न तरीकों पर प्रकाश डाला है। भविष्य में चक को कैसे कायम रखा जाये इस पर भी रोशनी पड़ी है। उन्होंने आगे कहा कि भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटने का प्रमुख कारण उत्तराधिकार कानून नहीं बल्कि देहातों में फैली बेहद गरीबी और बेकारी है। रोजगार के वैकल्पित साधन के अभाव में ही लोग भूमि को टुकड़ों में बांटते हैं। अतः उनके विचार में उद्योगीकरण से ही इस समस्या का समाधान संभव है। इससे लोगों को काम मिलेंगे, आमदनी बढ़ेगी, बचत होगी और पूंजी उपलब्ध होगी जिससे खेती में निवेश बढ़ेगा और खेती के लिए औज़ार प्राप्त होंगे। फलस्वरूप जोत की सीमा बढ़ेगी और छोटे जोत भी लाभकारी होंगे।

डा. आम्बेडकर भूमिकर की वर्तमान आनुपातिक दर के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने अपनी पी एच. डी. के शोध ग्रंथ "इवोल्युशन आफ प्रोविंशियल फाइनांस" में तथा बम्बई परिषद और विधानसभा में इस पर कठोर प्रहार किया था। उनकी मांग थी कि भूमि कर में भी आयकर के सिद्धान्त लागू होने चाहिए। आयकर टैक्स में आमदनी के एक निश्चित सीमा के बाद ही कर लगता है पर भूमि कर सभी पर आनुपातिक ढंग से लगता है चाहे किसान के पास एक एकड़ जमीन हो या 500 एकड़। इसके चलते अमीर गरीब से जो भेद है उस पर कतई ध्यान नहीं दिया जाता। उनकी यह भी मांग थी कि अलाभकर जोत कर से मुक्त रहें और बड़े जोतों पर कृषि आयकर लागू किया जाये।

डा. आम्बेडकर मजदूरों के एक बेजोड़ नेता थे। श्रमिक के कष्टों से वे बचपन से ही परिचित थे, जब अपने संबंधियों का दोपहर का खाना पहुंचाने के लिए वे मिल में जाया करते थे। 1938 में उद्योगीकरण संबंधी विधेयक के विरोध में जिसके अन्तर्गत हड़ताल पर प्रतिबंध लगाने का प्रावधान था, उन्होंने एक सफल हड़ताल आयोजित की थी। दलित मजदूरों पर काम के आबंटन को लेकर जो भेदभाव हो रहे थे, उसके विरुद्ध, मजदूर आन्दोलन में फूट पड़ने के भय से, आवाज न उठाने के वे खिलाफ थे। बम्बई परिषद में 1927 में मातृत्व की अवस्था में मजदूर महिलाओं को लाभ देने के लिए जो विधेयक आया था उसका उन्होंने जोरदार समर्थन किया था।

1942 में जब वे वायसराय की कार्यकारिणी परिषद के श्रम सदस्य नियुक्त हुए तो मजदूरों के हितों में, अल्प अवधि में, जितने कानून बने उतने कानून पहले कभी नहीं बने थे। चार से कम वर्ष की अवधि में फैक्टरी कानून में तीन बार संशोधन हुआ। एक में सवेतन छुट्टी, दूसरे में काम के घंटों में कमी और तीसरे में स्थान की सुविधा देने की बात थी। खान कानून दो बार संशोधित हुआ। एक में शिशु सदन और दूसरे में स्त्री-पुरुषों के लिए अलग-अलग स्नान की सुविधा रखने का प्रावधान था। खान मातृत्व कानून का भी दो बार संशोधन हुआ। उनमें एक के द्वारा छुट्टी की अवधि और अदायगी की राशि में बहुत बढ़ोतरी हुई। न्यूनतम मजदूरी और कर्मचारी बीमा योजना के लिए प्रभावकारी कदम उठाये गये।

पर जिनके लिए डा. आम्बेडकर का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा वे हैं—श्रम कल्याण कोषों की स्थापना। 1944 में एक अध्यादेश के द्वारा कोयला खान कल्याण कोष की स्थापना की गयी और 1946 में अधिनियम बना कर अबरख खान कल्याण कोष की स्थापना की गयी। इनके पूर्व मजदूरों के लिए सरकार कानून बनाती थी और उनका कार्यान्वयन खान मालिक पर छोड़ दिया जाता था। फलतः बहुत खामियां रहती थी। इन कानूनों के अन्तर्गत श्रमिकों के लिए कल्याण कार्यक्रम सरकार स्वयं बनाती और लागू करती और उनके खर्च, खान मालिक तथा उपभोक्ता से लिये जाते हैं। डा. आम्बेडकर के कार्यकाल के दौरान ही त्रिपक्षीय संगठन और बैठकें आरंभ हुई। इसके पूर्व मजदूर और मालिक अलग-अलग सरकार से मिलते थे।

महिलायें एक अन्य शोषित और दलित वर्ग हैं। आज यदि इन्हें पुरुषों के बराबर अधिकार मिले हैं तो उसका बहुत कुछ श्रेय डा. आम्बेडकर को ही है। संविधान में लिंग के आधार पर भेदभाव को वर्जित घोषित किया गया है। रोजगार पर इस आधार पर भेदभाव की मनाही है। यह भी प्रावधान है कि एक प्रकार के काम के लिए स्त्री-पुरुष को बराबर वेतन मिलेंगे। यही नहीं ब्याह, तलाक, उत्तराधिकार, निर्वाह खर्च और गोद लेने के संबंध में भी हिन्दू कोड में स्त्री-पुरुष को बराबर अधिकार है।

डा. आम्बेडकर का जन्म महू छावनी में एक निम्नमध्यवर्गीय महार (अछूत) परिवार में अप्रैल 14, 1891 को हुआ था। वहीं उनके पिता रामजी सकपाल एक माध्यमिक विद्यालय में प्रधान शिक्षक तथा पद से सूबेदार मेजर थे। डा. आम्बेडकर के बचपन में ही उनकी मां भीमाबाई की मृत्यु हो गयी थी। अवकाश मिलने पर पिता परिवार के साथ महाराष्ट्र राज्य के कोंकण स्थित डापोली कस्बे में आ बसे। यहीं

(शेष पृष्ठ 27 पर)

नए रास्ते

हरि विश्नोई

वर्षों पहले की बात है सुहागपुर बहुत पिछड़ा हुआ गांव था। उसमें कुछ गिने-चुने मकान ही पक्के थे। अधिकतर झोपड़ियां वहां मजदूरों की ही थीं। पिछले साल कुछ भूमिहीनों की सरकार की ओर से जमीन के पट्टे मिले थे। पटवारी ने आकर जमीन नापने के बाद उन्हें कब्जा भी दिला दिया था। इससे उन लोगों की हालत में थोड़ा सुधार जरूर हुआ था लेकिन फिर भी गरीबी ने उनका पीछा नहीं छोड़ा था। यही वजह थी कि रोज-रोज सुहागपुर में किसी न किसी बात पर लट्ठ चल जाते थे। कोई भी समझदारी से काम नहीं लेता था। होरी भी इन्हीं में से एक था। रहीम काका ने कई बार कोशिश की, किन्तु किसी पर कुछ भी असर नहीं हुआ। होता भी कैसे अधिकतर लोग अनपढ़ थे। रहीम काका बड़े नेक और ईमानदार आदमी थे। वह गांव वालों की बातों को देखकर बहुत दुखी होते थे। अधिकतर गांव वाले शराब और अफीम के आदी थे। नशे में उन्हें अपने घर और बच्चों की भी चिन्ता नहीं रहती थी, जो कुछ कमाते थे सब इधर उधर खर्च कर डालते थे। पेट भरने के लिए बाद में इधर-उधर से कर्जा मांगने की उन्हें आदत-सी पड़ चुकी थी। गांव का महाजन उनसे मोटी रकम सूद की वसूल करता था। मुफ्त में बेगार अलग से लेता था। न जाने कितने गरीब उसके यहां पीढ़ियों से बन्धुवा मजदूर बने हुए थे।

रहीम काका ने गांव के दस आदमियों को साथ लेकर एक सहकारी समिति का गठन किया था, जिसका उद्देश्य था उन्हें वक्त जरूरत पर अपने सदस्यों को रुपया उधार देना ताकि उन्हें महाजन के चंगुल से बचाया जा सके। रहीम काका लोगों को यही समझाते थे कि भैया अपनी मदद खुद ही करनी है। "बिखरी हुई जल की बूंदें सूख कर खत्म हो जाती हैं लेकिन वही बूंदें आपस में मिलकर महासागर बन जाती हैं" यह बात सभी के समझ में आने लगी थी कि अपनी तरक्की के लिए खुद अपने आप ही मिलकर कोशिश करनी चाहिए। साथ ही साथ ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिससे अपना भला तो हो लेकिन दूसरों को तकलीफ पहुंचे। सब के हित की बात सोचना ही इन्सान का पहला फर्ज है। यही सहकारिता का मतलब भी है। आज वही सहकारी समिति बढ़ते-बढ़ते बहुत बड़ी हो गई है। उसके सदस्यों की संख्या भी सैकड़ों में पहुंच गई है। अपने निजी भवन में उसका दफ्तर और खाद का गोदाम है। कर्जा देने के अलावा सस्ते गल्ले की एक दूकान भी चल रही है। जिसमें चीनी, मिट्टी का तेल, अनाज और सस्ता कपड़ा, साबुन आदि सही दामो पर बेचा जाता है। इस उपभोक्ता सामग्री वितरण केन्द्र में होने वाला लाभ भी समिति के सदस्यों का अपना लाभ होता है। इसलिए वहां खूब बिक्री होती है।

कभी-कभार होरी भी दूकान पर कुछ सामान लेने आ जाता। अनपढ़ होने के कारण बेचारे को हिसाब में जरूर दिक्कत होती थी। रहीम काका ने कई बार उससे कहा भी था कि कुछ पढ़ना-लिखना सीख ले लेकिन उसकी समझ में यह बात नहीं आती थी क्योंकि वह पढ़ना-लिखना जरूरी नहीं समझता था।

लेकिन एक बार होरी के साथ घटी एक छोटी-सी घटना ने उसका इरादा बदल दिया। हुआ यह था कि जब एक रोज वह शाम को घर पर वापस आ रहा था तो उसे लगा जैसे कोई पीछे से आकर उसे आवाज दे रहा है। पहले तो होरी ने अनसुनी कर दी लेकिन फिर उसे रुकना ही पड़ा। उसने देखा कि एक आदमी उसकी तरफ आ रहा था। उसे देख कर होरी रुक गया और बोला क्या बात है? वह गिड़गिड़ा कर बोला, "भैया जरा मेरी चिट्ठी पढ़कर सुनाता, जा भगवान तेरा भला करेगा, भाई में आंखों से लाचार पढ़ नहीं सकता भैया।"

होरी पहले तो उसकी बात सुन कर हंसा, फिर बोला, "मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है मैं लिखना-पढ़ना कुछ नहीं जानता।"

अरे भई क्यों झूठ बोलता है, "नहीं नहीं मैं सच बता रहा हूं।" तो क्या तू भी मेरी तरह देख नहीं सकता।"

मुझे तो भगवान ने दो आंखें दे रखी हैं। मैं तुम्हारी तरह अन्धा नहीं हूं...।" होरी को उसकी बातें चुभ गई थी पहले उसे इतना बुरा नहीं लगा था। कई बार ऐसा तो हुआ था कि दस्तखत करते समय उसे अंगूठा लगाना पड़ा लेकिन किसी ने कभी नहीं टोका। आज तो उसे ऐसा लग रहा था कि उस सूरदास में और मुझमें कोई अन्तर नहीं। यही सोचता-सोचता वह कब घर के दरवाजे पर आ गया उसे पता भी न चला। उसका दिमाग तो इसी उधेड़ बुन में लगा था।

होरी ने बेमन से रोटी खाई और सो गया। उसकी पत्नी ने पूछा तो वह कुछ बता नहीं पाया। आखिर बताता भी कैसे?

बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जिन्हें कहने के लिए अच्छी भाषा और शब्दों की जरूरत होती है। होरी अन्दर ही अन्दर धुएं से घुट रहा था। उसे टूटे झप्पर वाले घर में बीता हुआ अपना बचपन याद आ रहा था जो सारा खेल कूद में ही बरबाद हो गया था। काश उसे भी अगर किसी ने स्कूल का दरवाजा दिखा दिया होता तो वह भी अपने बच्चों को क ख ग कुछ तो सिखा सकता था। अब तो वह मजबूर था। रात-भर वह करवटें बदलता रहा। पूरी रात उसे नींद नहीं आई। मुर्गे की बांग सुनते ही उसने चारपाई छोड़ दी, उसकी हर सुबह मजदूरी से शुरू होती थी और हर शाम पेट भरने के बाद खत्म हो जाती थी। होरी ने सोचा क्या उसके बच्चे भी ऐसी जिन्दगी ही जियेंगे, सारी उम्र ढोर-डंगर ही चराते रहेंगे? नहीं! उसने फैसला कर लिया था कि कुछ भी हो वह अपने बच्चों को पढ़ायेगा, खुद भी पढ़ेगा, अपनी पत्नी को भी पढ़ायेगा। उसे पता था कि रोज शाम को गांव के बहुत सारे बड़े बुजुर्ग इकट्ठा होकर सोसायटी में पढ़ना-लिखना सीखते हैं। शाम को वह भी जरूर जायेगा।

यही हुआ होरी ने उस दिन से अ-आ सीखने की बात जो शुरू करी तो कुछ ही दिनों में उसे लिखना-पढ़ना सब आ गया। होरी का यह सपना इतनी जल्दी सच हो जायेगा, उसे उम्मीद नहीं थी। जहां चाह वहीं राह होती है यह कहावत उसने सच कर दिखाई।

रहीम काका कहते थे कि पढ़ना-लिखना ही काफी नहीं है, पढ़े-लिखे इन्सान को हर काम सोचकर समझ कर करना चाहिए वरना बाद में परेशान होना पड़ता है। उनकी यह बात होरी को बिल्कुल सच लग रही थी क्योंकि आज दोपहर से वह नई परेशानी में घिरा हुआ था। उसकी आंखें आसमान में कुछ खोज रही थीं कि तभी वह हड़बड़ा गया। रहीम काका ने पीछे से आकर उसे चौंका दिया था। पचास साल की उम्र में भी काका बच्चों की-सी हरकतें करते थे। बोले, "क्या रोनी सूरत बनाये पड़े हो आज बीवी से कुछ झड़प हो गई है क्या?

होरी अन्दर ही अन्दर दुखी था उसकी आंखों में तो आंसू नहीं थे लेकिन सर्दी में भी उसके माथे पर पसीना आ रहा था। वह अपने दर्द को छिपा कर न रख सका और रहीम काका को उसने सब कुछ बता डाला, उन दिनों बड़ी परेशानी थी कहीं से भी तो पैसे का जुगाड़ नहीं हो पा रहा था, सेठ ने भी मना कर दिया था, क्योंकि उसके पास गिरवी रखने के लिए जेवर नहीं था और इतनी बड़ी रकम बिना आड़ के सेठ को देने में संकोच हो रहा था। कहीं किस्तों की किस्ती वापसी में डूब गई तो क्या होगा? सौ-दो सौ रुपये की बात होती तब भी ठीक था। पूरे 1000 रु. का सवाल था। होरी की पत्नी गले में गुलूबन्द पहने बिना अपने भैया के ब्याह में जाने को तैयार नहीं थी। होरी ने लाख समझाया कि दो चार दिन की बात है। पास-पड़ोस से किसी से मांग कर काम चला लें लेकिन वह इस बात के लिए कतई राजी नहीं थी। उसे तो एक ही जिद थी अगर शादी में जाऊंगी तो अपना जेवर पहन कर वरना घर में पड़ी रहूंगी। होरी जानता था कि इसका मतलब था सुबह-शाम दोनों वक्त की कलह वह बिना नागा किये क्लेश करती रहेगी। इसीलिए उसने सोचा कि एक बार चीज बन जायेगी तो कम से कम पिंड तो छुटेगा। वरना जेवर का भूत सिर पर चढ़ा ही रहेगा इसीलिये चक्कर में था कि कहीं से पैसे मिले। तभी उसे बनवारी मिल गया। बनवारी इधर-उधर के काम करने में गांव भर में सबसे तेज माना जाता था। जब उसने होरी की बात सुनी तो हंस कर बोला, "अभी तरकीब बताये देता हूं। तुम तो सहकारी समिति के सदस्य हो तुम्हें वहां से कर्जा मिल सकता है। सुनो नकद मत लो रुपयों की जगह खाद के बोरे उधार ले आओ और बाकी काम मेरे जिम्मे...।

होरी ने तुरन्त सोसायटी में जाकर कर्जे के कागज पत्र भरे और खाद के कट्टे लाकर बनवारी को सौंप दिये।

बनवारी ने खाद की बोरी बैल गाड़ी पर लादी और शहर जाकर उनके पैसे बना लाया। बाजार में खाद का भाव महंगा था। ग्यारह सौ रुपये ला कर उसने होरी के हाथ पर रख दिये और देखने लगा। होरी ने पचास का एक नोट बनवारी को दिया तो उसका चेहरा खिल उठा। उसी दिन होरी ने चांदी के गुलूबन्द पर सोने का पत्थर मढ़वाया और ले जाकर बीवी के सामने रख दिया। उसे देखकर बीवी खुश हो गई। जब सब कुछ ठीक-ठाक बीत गया लेकिन आज पता लगा कि वसूली होने वाली है और इसकी जड़ वही कर्जे की खाद है जो समिति से ली थी।

पहले होरी की बात सुनकर रहीम काका चुपचाप सोचते रहे फिर बोले क्यों जनाब कर्जा लेते वक्त तुमने यह भी नहीं सोचा कि उसे चुकाना पड़ेगा। अब अदायगी की नोटिस आई है तो तुम्हारी नानी मर रही है। पैसा तो चुकाना ही पड़ेगा सूद और जुर्माना अलग....।

"असल मुसीबत तो यही हो गई की मैंने सोसायटी से कर्जा ले लिया। न होता बांस न बजती बांसुरी। होरी ने कहा।

वाह भैया वाह एक तो तुम्हारी मदद करो ऊपर से दोष देते हो। सोचो कि यह सोसायटी आखिर है किसकी? इसमें पैसा कहां से आता है, सहकारी बैंक से। अगर समिति का पैसा समय पर अदा न किया जाये तो समिति को बैंक से पैसा नहीं मिलेगा

और फिर हमारी मदद कौन करेगा? वो साहूकार....जो एक बार अंगूठा लगवा ले तो सात पुश्तों तक पीछा न छोड़े। इसीलिए तो सहकारी समिति से कर्जा लेकर हम सब काम चलाते हैं। फिर वक्त पर अपनी फसल बेच कर उधार चुका देते हैं। ऐसा न करें तो सम्मन, कुर्की, वारंट और न जोन। थाने तहसील के कितने चक्कर अलग काटने पड़ते हैं। इसलिए अगर तुम भी थोड़ा-थोड़ा पैसा बचाकर बैंक में जमा कर देते तो आज इतनी दिक्कत तो न होती।''

''तुम भी अजीब बात करते हो काका। पैसे का काम तो पैसे से ही चलता है अदा तो मैं करता तब जब पहले कुछ बचाता?''

रहीम काका ने पूछा, ''क्या फसल के पैसे नहीं मिले थे?'' मिले तो थे लेकिन वह इतने कहां थे जो कर्जा अदा कर देता और घर का खर्च भी चला लेता।''

होते भी कैसे अगर वो खाद बाजार में बेचने की जगह तुम अपने खेत में डालते तो पैदावार बढ़ती और पैसा अधिक मिलता लेकिन तुमने तो फसल के लिए उधार लिया और घर के खर्च में उठा दिया। दूसरी मण्डी में तुम्हें अपनी उपज ले जाने की जरूरत ही क्या थी? वहां तो लूट खसोट ही होती है कम से कम दाम, ज्यादा तोल, आदि के नाम पर न जाने कितनी कटौतियों होती हैं। इससे किसानों को बचाने के लिए ही तो सहकारी क्रय-विक्रय समितियां मण्डियों में खुली हुई हैं। वहीं पर अपनी उपज ले जाते और सही दाम पाते। तुम्हें चाहिए था कि पहले अपने कर्जे के बराबर उपज समिति में जमा करते या उसके हाथों बेचते तब मण्डी की तरफ अपना मुंह करते।''

ठीक कह रहे हो काका मैं अपनी गलती महसूस कर रहा हूं। आगे से पूरा ध्यान रखूंगा कि ऐसी गलती न होने पाये। बात यह है कि पैसे जब तक पास रहते हैं तो खर्चे पर खर्चे निकलते रहते हैं। अब आगे से मैं समय पर कर्जे की रकम अदा कर दिया करूंगा और इसके अलावा थोड़ा बहुत कुछ बचाया भी करूंगा। वरना तो खाली हाथ रहने पर कभी-कभी तो बड़ी परेशानी हो जाती है।

फिर होरी ने कभी ऐसा गलत कदम नहीं उठाया। जब भी कर्जा लिया तो उसका उपयोग उसी काम में किया और उसे सही समय पर अदा कर दिया। समन्वित ग्रामीण विकास योजना में उसने भैंस खरीदने के लिये कर्जा ले कर काम शुरू किया। दूध के इस काम में उसे काफी फायदा हुआ धीरे-धीरे उसकी माली हालत में भी सुधार होने लगा था क्योंकि अब होरी को जिन्दगी का सही मतलब समझ में आ गया था। उसने अपने अंधेरे को हमेशा के लिए उजाले में बदल लिया था। इतना अवश्य था कि यह नया सूरज लाने में रहीम काका ने उसकी काफी मदद की थी।

एक दिन होरी ने रहीम काका से हाथ जोड़कर कहा मैं आपका अहसान कैसे चुकाऊंगा? तो वो बोले जिस तरह मैंने तुम्हें राह दिखाई है उसी तरह तुम भी दूसरों की मदद करने से कभी पीछे मत हटना। खुशहाली लाने का बस यही एक रास्ता है, सबसे पहले खुद से शुरुआत करें। उसके बाद दूसरों को सुधारने की कोशिश करनी चाहिए। होरी अब तुम और हम मिलकर क्यों न पूरे गांव की तस्वीर ही बदल दें?

होरी ने कहा—दो जनों से क्या होता है काका?

रहीम काका बोले, ''एक और एक मिल कर तो ग्यारह होते हैं फिर तुम हिम्मत क्यों हार रहे हो....?''

....और होरी ने यह बात गांठ बांध ली थी दोनों ने तय कर लिया था कि वे दहेज, बाल विवाह, मृत्यु भोज, अन्य अंध विश्वास, जुआ और शराब खोरी जैसी तमाम बुराईयों को अपने गांव से उखाड़ कर फेंक देंगे। सभी को साक्षर बनाएगें। छोटा परिवार रखने की सलाह देंगे और बताएंगे की मुसीबतों को दूर करना कितना आसान है।

सच्ची समाज सेवा से बढ़कर कोई पुण्य, कोई भक्ति, कोई पूजा नहीं है। हमारे देश में सभी संतों ने सर्वे भवन्तु सुखिनः का मंत्र दोहराया है। यानि की संसार में सभी सुखी हों और इसी के साथ वसुधेव कुटुंबकम् का सपना भी हमारे देश में साकार हुआ है। हम पूरी धरती पर बसने वालों को एक कुटुम्ब की तरह देखते हैं। चाहे वह किसी कौम या किसी मजहब के हों। अनेकता में एकता ही हमारी विशेषता है।

आपसी प्यार बढ़ाने वाली ऐसी बातें गांव के लोग जब चौपाल में होरी और रहीम काका के मुंह से सुनते तो घण्टों तक उठने का नाम न लेते धीरे-धीरे इन बातों का असर उन पर पड़ रहा था। अब गांव के लोग लड़ाई झगड़ा करने की जगह ऐसे कामों में लगे रहते थे जिनसे उनकी आमदनी बढ़ सके। उधर होरी भी अब अनपढ़ गंवार नहीं बल्कि समझदार आदमी माना जाता था। दूसरों की मदद में वह हमेशा आगे रहता यही वजह थी कि वह अपने गांव की सहकारी समिति की ओर से सहकारी बैंक का प्रतिनिधि, फिर निदेशक मण्डल का सदस्य और फिर सहकारी बैंक का अध्यक्ष चुना गया। उसे खुद भी ऐसा पता नहीं था कि गांव का वह सीधा-साधा होरी एक दिन इतने ऊंचे पद तक पहुंच जाएगा।

होरी के लिए यह नया अनुभव था। उसने सब की सलाह से गांव वासियों के भले के लिए नई सेवा, सुविधा और सहायता की

योजना बनाकर बैंक द्वारा लागू करवाई। बस फिर क्या....था....कुछ ही दिनों में पूरे इलाके की काया पलट गई।

कच्ची सड़क अब पक्की हो गई थी। गली-मुहल्ले सब साफ दिखाई देते। गरीबी के साथ-साथ गांव की गन्दगी भी दूर होने लगी थी क्योंकि सब लोग अच्छी तरह समझ चुके थे कि हमें किस तरह रहना चाहिए। गांव, स्कूल, अस्पताल, डाकघर, बैंक, बिजली, टी.वी., ट्रैक्टर, गोबर गैस आदि सब कुछ सुलभ हो गया था। ग्राम सेवक की मदद से विकास योजनाओं का लाभ गांव वालों को मिल रहा था। सुहागपुर की खुशहाली को देखकर आस-पास के गांव वालों को बड़ा अचम्भा हुआ। उन्होंने भी जी-तोड़ कोशिश की और देखते ही देखते आस-पास के गांव रोशनी से चमक उठे। अब गांव के युवक शहर की तरफ नहीं भागते थे। नए-नए तरीकों से गांव में रहकर खेती करने के अलावा उन्होंने बैंक से कर्जा लेकर सहकारी मछली पालन तथा मुर्गी पालन केन्द्र भी शुरू किए जिनमें भरपूर लाभ हुआ क्योंकि इन केन्द्रों का मालिक कोई एक आदमी तो था नहीं इसलिए जो फायदा हुआ उसके हिस्सेदार सभी लोग थे।

काका ने होरी से कहा, "गांव में सभी की आमदनी तेजी से बढ़ रही है। यह अच्छी बात है लेकिन कहीं ऐसा न हो कि लोग-बाग अपनी मेहनत की कमाई फिर फिजूल खर्चों में उठाने लगें या कोई धोखेबाज लालच देकर ही न ठग ले।

होरी बोला, "मैंने पहले ही सब को इस बारे में अच्छी तरह बता रखा है। तभी तो लोग अपनी बचत सहकारी बैंक में जमा कर रहे हैं या राष्ट्रीय जमा योजना में छः वर्षीय बचत पत्र खरीदते हैं। सबसे ज्यादा ब्याज और पैसे की पूरी-पूरी हिफाजत....।"

तभी दो लड़कों ने आकर उन्हें बताया कि हमारे गांव का नम्बर पूरे जिले में अव्वल आया है। हमने सबसे अधिक वृक्ष लगाए हैं। यह देखो अखबार में खबर छपी है कि सुहागपुर को फलदार वृक्षों के एक सौ पौधे दिए जाएंगे।

यह सुनकर तो होरी और रहीम काका की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने तुरन्त आकर यह खुशखबरी सब को सुनाई। गांववासी बोले, "अभी तो देखना और कितने ईनाम मिलते हैं। यह सब आप दोनों की ही मेहरबानी से ही तो है।"

इस पर होरी और रहीम काका हाथ जोड़कर कहने लगे, "नहीं भाई ऐसा मत कहो यह तो आप सब लोगों के सहयोग और मेहनत का ही फल है। हम दोनों ने इसमें किया ही क्या है? कुछ भी तो नहीं हा इतना जरूर है आज के समय में आपसी प्यार, सहयोग और मेहनत ही सब कुछ है। इसी से गरीबी दूर हो सकती है और हमारे गांव की तरक्की के नए रास्ते खुल सकते हैं।"

एच-88, शास्त्री नगर
मेरठ (उत्तर प्रदेश)

(पृष्ठ 23 का शेष)

आम्बेडकर की आरंभिक शिक्षा पूरी हुई। बाद में सतारा के हाई स्कूल में उनकी भर्ती हुई। वहीं पर एक ब्राह्मण शिक्षक जो उन्हें बहुत चाहता था, उनका उपनाम अम्बेडकर रख दिया। शिक्षक का नाम भी अम्बेडकर था। वहां से उनका परिवार बम्बई आ गया। वहां उन्होंने एलफिस्टन स्कूल से मैट्रिक और एलफिंस्टन महाविद्यालय से बी. ए. पास किया। उसके बाद महाराजा बड़ौदा से छात्रवृत्ति पाकर वे अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय से एम. ए., पी-एच. डी. और लंदन विश्वविद्यालय से एम. एस-सी. और डी. एस. सी. की डिग्रियां और बैरिस्टरी की सनद लेकर भारत लौटे। उन्हें जीवनभर, यहां तक की विदेशों से उच्च शिक्षा पाकर भारत लौटने पर भी, अस्पृश्यता के अभिशाप में झुलसना पड़ा। 1935 में उन्होंने धर्मान्तर की अपनी इच्छा प्रगट की और लगभग 20 वर्ष बाद 1956 अक्तूबर में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली।

6 दिसम्बर, 1956 को दिल्ली में उनको निर्वाण प्राप्त हुआ।

ई/13-ए, डी. डी. ए. फ्लैट,
मुनीरका, नई दिल्ली-110067

ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग की सुविधाएं

मनोहर पुरी

आर्थिक विकास की कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक उसका आधार ग्रामीण अंचलों की आवश्यकताओं के अनुरूप न बनाया जाए। 21वीं सदी में प्रवेश करने की तैयारी में भले ही अनेकानेक परिकल्पनाएं की गई हों परन्तु जब तक कृषि प्रधान देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को उनसे सम्बद्ध न किया जाए तब तक उसके मनोवांछित परिणाम मिलने संभव नहीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद ही इस तथ्य को रेखांकित कर लिया गया था फिर भी किसी न किसी कारण से इसे प्राथमिकता प्राप्त नहीं हुई। उस समय देश की अर्थव्यवस्था के मजबूत ढांचे के लिए जो योजनाएं बनाई गई उनका अप्रत्यक्ष लाभ भले ही ग्रामीण क्षेत्र को मिला, सीधे रूप से उन्हें उन कार्यक्रमों के साथ जोड़ा नहीं गया।

देश ने निरन्तर आर्थिक उन्नति की ओर कदम बढ़ाए परन्तु गांव उस गति से साथ चल नहीं पाए। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्थिक और सामाजिक विषमताएं बढ़ने लगीं। शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के लोगों के रहन-सहन में कहीं एकरूपता नहीं आ पायी। हरितक्रांति के कारण देश खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गया परन्तु इस क्रांति के लाभ पूरे देश को एक समान नहीं मिल पाये। क्योंकि यह क्रान्ति सिंचाई योजनाओं पर आधारित थी इसलिए असिंचित क्षेत्र हरितक्रांति की सम्पन्नता से अछूते रह गए अर्थात ग्रामीण जनसंख्या का भी एक बड़ा भाग आर्थिक समृद्धि अथवा वास्तविक क्रय शक्ति से वंचित रह जाने के कारण पिछड़ा रह गया।

भारत के ग्रामीण अंचलों की सामाजिक और आर्थिक संरचना शताब्दियों से ऐसी रही है कि यहां के निवासी अपनी अधिकांश आवश्यकताओं के लिए साहूकारों पर निर्भर रहे। इन साहूकारों द्वारा किस प्रकार से ग्रामीण जनता का शोषण किया जाता था यह तथ्य सर्वविदित है फिर भी ये साहूकार अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग थे। ऐसी स्थिति में यह परिकल्पना करना सहज ही था कि शहरों में विकसित हो रही बैंकिंग प्रणाली के लाभ ग्रामीण क्षेत्रों में भी उपलब्ध कराये जायें। दूसरे शब्दों में बैंक अपने आप को मात्र व्यवसायिक संस्थान ही न समझें बल्कि सामाजिक दायित्व का भार वाहन करने के लिए सामने आएं।

गांव के निवासी लाख प्रयत्न करने पर भी अपने आप को साहूकारों के चंगुल से बचा नहीं पाते थे और एक बार उनके शिकंजे में फंसने के बाद उनके लिए बाहर निकलने का कोई मार्ग शेष नहीं रहता था। दुर्भाग्यवश 1947 में हमें जो आर्थिक और मौद्रिक नीति विरासत में मिली उसका मूल उद्देश्य भी भारतीय जनता का शोषण करना ही था। बिना किसी विशेष अध्ययन के हमने अंग्रेजों की इस प्रणाली को अपना लिया और 1949 में भारतीय रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण करके सभी बैंकों के नियंत्रण एवं निरीक्षण का अधिकार उसे सौंप दिया गया। 1950 में सरकार ने सहकारी बैंकों का विकास किया परन्तु लोगों में बैंकों के प्रति एक भय बना रहा। आज भी ग्रामीण अंचलों में रहने वाले लोगों का एक बहुत बड़ा हिस्सा बैंकिंग सुविधाओं से अपने आप को वंचित ही रखे हुए हैं।

सरकार हर प्रकार से गांवों के निवासियों को बैंक सुविधाएं उपलब्ध करवाना चाहती थी। 1955 में जब इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया का राष्ट्रीयकरण भारतीय स्टेट बैंक एक्ट 1955 के अन्तर्गत किया गया तो एक्ट की प्रस्तावना में यह साफ तौर पर कहा गया कि "बैंकिंग सुविधाओं के ग्रामीण और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर विस्तार और जनता को अन्य सुविधाएं प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है।" इसी योजना के अधीन 1959 में पूर्व रियासतों से संबंधित बैंकों को भारतीय स्टेट बैंक का सहयोगी बना दिया गया। इसका मुख्य उद्देश्य यही था कि बैंकों के माध्यम से अधिक-से-अधिक बचतों को प्रोत्साहित किया जाए और उस राशि का देश के विकास हेतु निवेश हो। इतना करने पर भी जब अच्छे परिणाम सामने नहीं आये और ग्रामीण क्षेत्र बैंकिंग सुविधाओं से वंचित प्रायः ही रहे तो 19 जुलाई 1969 को 14 व्यवसायिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया ताकि इसके माध्यम से बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण बढ़ाया जा सके।

बैंकों के राष्ट्रीयकरण एवं ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की शाखाएं खोलने को प्रोत्साहन देने के फलस्वरूप बैंकिंग प्रणाली को गांव-गांव तक पहुंचा दिया गया। जून 1969 में बैंकों की मात्र 6669 शाखाएं और कार्यालय थे जबकि आज पूरे देश में 56282 शाखाएं और कार्यालय काम कर रहे हैं। इस प्रकार प्रतिवर्ष देश में 2480 शाखाओं की वृद्धि हुई। राष्ट्रीयकरण के समय जहां प्रत्येक बैंक की शाखा पर 64 हजार लोगों का भार था वहीं अब दो हजार लोगों को बैंक की सुविधा प्राप्त है। ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक प्रणाली में उल्लेखनीय प्रगति की है। जून 1969 में ग्रामीण क्षेत्रों में केवल 1833 शाखाएं थीं जो अब बढ़ कर 31,641 हो गई हैं। राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक वर्ष 1990-91 में देश के विभिन्न राज्यों के 86 जिलों में अपने कार्यालय खोलने जा रहा है। राष्ट्रीय कृषि और विकास बैंक छोटे सिंचाई कार्यों, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम और राज्य बिजली बोर्ड के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त भूमि विकास, फार्म यंत्रीकरण, शुष्क भूमि पर कृषि, वृक्षारोपण और बागवानी, डेरी विकास और पशुपालन, मत्स्यपालन, भण्डारण, वन विकास और बंजर भूमि विकास, बायो गैस, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति कार्य योजनाओं के अतिरिक्त गैर कृषि क्षेत्र के क्रिया कलापों के लिए वित्तीय सहायता उपलब्ध कराता है।

इस समय देश में ग्रामीण बैंकों की संख्या 196 है। इन बैंकों की 14,000 शाखाएं हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की जमा राशि में 7 गुनी बढ़ोतरी हुई है। जून 1969 में जहां यह राशि 306 करोड़ रुपये थी वह आज बढ़ कर 20,907 रुपये करोड़ हो गई है। इतना होने पर भी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक लगातार घाटे में चल रहे हैं। इसलिए इस बात पर भी विचार-विमर्श किया जा रहा है कि इन बैंकों का व्यावसायिक बैंकों में विलय कर दिया जाए।

सहकारी बैंक मुख्य रूप से कृषि और उससे संबंधित क्रिया कलापों, ग्राम आधारित उद्योगों की आवश्यकताएं पूरी करते हैं। लगभग सभी बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण की सुविधाएं प्रदान कर रहे हैं। कृषि ऋण अधिकतर ट्रैक्टर, कृषि संयंत्रों, फसल, खाद, बीज, कीटनाशक, डेरी, मुर्गी, बकरी और सुअर पालन आदि कार्यों के लिए दिया जाता है। ग्रामीण अंचलों की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक व्यवसायिक बैंक, सहकारी बैंक, सहकारी समितियां, भूमि विकास बैंक और ग्रामीण बैंक कार्यरत हैं। व्यवसायिक बैंकों पर मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का दायित्व है। इन बैंकों द्वारा बैंकिंग सुविधाओं में तेजी से विस्तार किया जा रहा है। कुछ बैंकों द्वारा ग्रामीण विकास केन्द्र एवं कृषि विकास शाखाएं शुरू की हैं। बैंकों ने गांवों को गोद लेकर उनके विकास का दायित्व भी संभाला है। गांव-गांव तक बैंकों के पहुंच जाने से एक बड़ी सीमा तक लोग महाजनों के चंगुल से मुक्त होने लगे हैं। इन बैंकों द्वारा गांव के किसानों, मजदूरों एवं कारीगरों को 5000 रुपये तक का ऋण बिना किसी जमानत एवं सम्पत्ति गिरवी रखे देने के निर्देश हैं। पहले यह ऋण छोटे किसानों एवं ग्रामीण कारीगरों को ही दिए जाते थे। अब मझले और बड़े किसान भी इन सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं। यह बैंक प्राथमिक क्षेत्रों को आसान शर्तों पर ऋण प्रदान करते हैं, जिनमें लघु उद्योगों के साथ-साथ घरेलू और ग्रामीण इकाइयां भी सम्मिलित हैं। कारीगरों, ग्रामीण और कुटीर उद्योगों को पिछड़े क्षेत्रों में 25 हजार रुपये तक का ऋण 10 प्रतिशत की दर और अन्य क्षेत्रों में 12 प्रतिशत की रियायती दरों से दिया जाता है। इन ऋणों पर किसी प्रकार की गारन्टी देने की आवश्यकता भी नहीं होती। इसके अतिरिक्त कृषि ऋण के मामले में मार्जिन राशि, प्रतिभूति मानदण्डों और ब्याज दरों को उदार बनाया गया है। अब 10 हजार रुपये तक के कृषि ऋणों पर कोई मार्जिन राशि नहीं मांगी जायेगी और न ही गारंटी पर जोर दिया जायेगा। 25 हजार रुपये तक के किसानों के अल्पावधि ऋणों के लिए रियायती दरें लागू की गई हैं। ऐसे निर्देश भी दिए गए हैं कि 25 हजार तक की ऋण सीमा वाले प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के सभी ऋण आवेदनों को दो सप्ताह के भीतर-भीतर और 25 हजार रुपये से अधिक के ऋण आवेदनों को 8 से 9 सप्ताह के अन्दर-अन्दर निपटा दिया जाएं। कृषि ऋणों के लिए आवेदन फार्म क्षेत्रीय भाषाओं में भी उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

गांवों में कुएं इत्यादि बनवाने, नलकूपों और पम्पसैटों को लगाने, ट्रैक्टर एवं कृषि संबंधी उपकरणों की खरीद के लिए दीर्घकालीन ऋण मुख्य रूप से भूमि विकास बैंक उपलब्ध कराते हैं। सहकारी समितियां भी बैंकों से अपने सदस्यों के लिए ऋण प्राप्त करती हैं। अन्य अनेक प्रकारों से भी ग्रामीण क्षेत्र के किसानों, हस्तशिल्पियों और कारीगरों को ऋण की सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं। इतना होने पर भी यह कहा जा सकता है कि जिन उद्देश्यों को सामने रख कर 1969 में राष्ट्रीयकरण किया गया था वह पूरे नहीं हुए और ग्रामीण जनता को उतना लाभ नहीं मिल पाया जितना कि मिलना चाहिए था। इसका प्रमुख कारण यह है कि बैंक अपने क्रिया कलापों के लिए किसी न किसी प्रकार से अफसरशाही और राजनीति के शिकार होते रहे जबकि उन्हें स्वायत्त जिला इकाइयों के रूप में उभर कर जनता तक पहुंचना चाहिए था।

प्रत्येक जनपद के विकास अधिकारी के कार्यकलापों की रिपोर्ट लिखने का अधिकार वहां के बैंक अधिकारी को मिलना चाहिए था न कि जिला प्रशासन को ताकि वह अपने कार्यों के लिए बैंकों के प्रति उदत्तरदायी होते।

ग्रामोत्थान के लिए यह भी आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में काम कर रहे बैंकों में अधिकारी और कर्मचारी उन्हीं क्षेत्रों से लिए जाएं ताकि वह लोगों की भाषा और क्षेत्र की समस्याओं को अधिक अच्छी तरह से समझ सकें। ऐसे कर्मचारियों का ऋण देने एवं वसूल करने में जनता के साथ बेहतर समन्वय होने की संभावना होती है। अब तक इस पक्ष को एक सीमा तक अनदेखा किया जाता रहा है।

ग्रामीण विकास की गति में बैंक अधिक सकारात्मक भूमिका का निर्वाह कर सकें इसके लिए इस बात के पूरे-पूरे प्रयास किए जा रहे हैं कि उनके क्रियाकलापों में अफसरशाही और राजनीतिज्ञ किसी प्रकार से हस्तक्षेप न कर सकें। छोटे और सीमान्त किसान का आर्थिक उत्थान और सामाजिक कल्याण ही सरकार के लिए सर्वोपरि है। इसी कारण विभिन्न संस्थानों के माध्यम से किसानों को कृषि और सम्बद्ध कार्यकलापों के लिए मदद देने हेतु पर्याप्त और समयबद्ध ऋण देने की राष्ट्रीय नीति को वर्तमान सरकार द्वारा जारी रखा गया है। इस नीति का मुख्य उद्देश्य छोटे और सीमान्त किसानों तथा अन्य कमजोर वर्ग के लोगों को इस योग्य बनाना है कि वे उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए आधुनिक संयंत्रों एवं उन्नत कृषि पद्धतियों को व्यवहार में ला सकें।

ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में तेजी लाने के लिए सरकार ने कृषि ऋण की कुल मात्रा में बढ़ोतरी की है। संस्थागत अभिकरणों द्वारा वितरित कृषि ऋण की मात्रा जहां 1985-86 में 6794 करोड़ रुपये थी वह 1988-89 में बढ़कर 11255 करोड़ रुपये हो गई। 1989-90 के लिए इस वर्ग के ऋण वितरण का लक्ष्य 13294 करोड़ रुपये रखा गया है।

अप्रैल 1988 में सहकारी क्षेत्र के बैंकों को किसानों के लिए ऋण कार्ड योजना शुरू करने का सुझाव दिया गया था। कुछ बैंकों ने कुछ राज्यों के चुने हुए जिलों में कृषि कार्ड की योजना शुरू कर दी है। ये कार्ड उन किसानों को दिए जाते हैं जिनका रिकार्ड अच्छा हो, जिससे वे अपनी उत्पादन संबंधी निविष्टियों की लागत को पूरा करने के लिए बिना किसी कठिनाई के कृषि ऋण प्राप्त कर सके। ऋण कार्ड योजना के अन्तर्गत लिए गए ऋणों से किसानों द्वारा उत्पादित फसलों का वृहत फसल बीमा योजना के अन्तर्गत बीमा भी किया जाता है।

आज देश के दूरस्थ क्षेत्रों में भी बैंकिंग की सुविधाओं को उपलब्ध करवा दिया गया है। जहां बैंक शाखाओं का विस्तार हुआ वहीं कर्जदारों के खातों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। प्रश्न उठता है कि क्या इससे छोटे और मध्यम दर्जे के कर्जदारों की वास्तविक आय में कोई गुणात्मक बढ़ोत्तरी हुई है? क्या इससे सम्पूर्ण ग्रामीण समाज की आर्थिक दशा में सुधार हुआ है और क्या छोटे और मध्यम दर्जे के किसान की ऋण चुकाने की क्षमता में बढ़ोत्तरी हुई है? दुर्भाग्यवश इन सभी प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है। कभी-कभी तो ऐसा भी लगने लगता है कि कहीं हमारे ग्रामीण किसान इस ऋण के दुष्चक्र में तो नहीं फंस गये। संभवतः इन्हीं समस्याओं का सामना करने के लिए राष्ट्रीय मोर्चा सरकार और उससे जुड़े हुए राजनैतिक संगठन ऋण मुक्ति का नारा देने के लिए बाध्य हुए होंगे। ग्रामीण अंचलों की ऋण ग्रस्तता को ध्यान में रखते हुए और अपने चुनाव घोषणा पत्र के अनुरूप इस सरकार द्वारा किसानों एवं कारीगरों द्वारा लिए गए ऋणों का आकलन कराया जा रहा है। अभी तक पूरे आंकड़े उपलब्ध नहीं हुए। प्राप्त जानकारी के अनुसार सितम्बर 1989 के अन्त तक सरकारी क्षेत्र के 28 बैंकों द्वारा घरेलू और ग्रामीण उद्योगों सहित लघु उद्योगों को दिए गए कुल बकाया अग्रिमों की राशि 13,781 करोड़ रुपये थी।

ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों पर ऋणों के इस भार को देखते हुए और उन्हें ऋण ग्रस्तता से मुक्त करने के लिए ही सरकार ने एक योजना बनाई है जिसके अन्तर्गत सहकारी बैंकों सहित विभिन्न बैंकों से किसानों, कारीगरों और बुनकरों द्वारा 10 हजार रुपये तक के लिए गए ऋणों के लिए ऋण राहत प्रदान की जा रही है। सरकारी क्षेत्र के बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से लिए गए ऋणों पर ऋण राहत की पूरी जिम्मेदारी भारत सरकार वहन करेगी। राज्य सरकारों को सहायता करने के लिए राज्य सहकारी बैंकों और राज्य भूमि विकास बैंकों द्वारा दिए गए ऋणों पर राहत का 50 प्रतिशत भार केन्द्रीय सरकार वहन करेगी। सरकार मानती है कि इन वर्गों पर ऋण का जो बोझ है उन्हें उतारने में इस वर्ग के लोग असमर्थ हैं। इस बात को ध्यान में रख कर ही ऋण राहत की योजना बनाई जा रही है जिसके अनुसार 2 अक्तूबर 1989 तक की स्थिति के अनुरूप अल्पावधि और दीर्घावधि ऋणों की सभी अतिदेय राशियां शामिल होंगी। सरकार ने स्पष्ट किया है कि ऋणकर्ताओं की जोत भूमि के क्षेत्र पर कोई सीमा लागू नहीं होगी। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि जिन लोगों ने सक्षम होते हुए भी विगत में ऋणों की वापसी अदायगी करने में जानबूझ कर इंकार किया है, उन्हें इस योजना के अन्तर्गत नहीं लिया जायेगा।

सरकार की इस योजना का कुछ क्षेत्रों में यह कह कर विरोध किया जा रहा है कि इस प्रकार जहां बैंकिंग प्रणाली पर विपरीत प्रभाव होगा वहीं लोगों में ऋण न चुकाने की प्रवृत्ति भी प्रबल होगी। अर्थशास्त्रियों द्वारा इस विचार को बिल्कुल तर्क संगत नहीं माना जा रहा क्योंकि वर्षों से बैंकों द्वारा अरबों रुपये बट्टे खाते में डाले जाते रहे हैं। बड़ी-बड़ी औद्योगिक इकाइयों से न वसूली जा सकने वाली राशि को यदि जोड़ा जाए तो यह वर्तमान ऋण राहत योजना के अधीन आने वाली राशि से कहीं अधिक होगी। इसके अतिरिक्त कल्याणकारी सरकारों के लिए यह अनिवार्य है कि वह अपने नागरिकों को ऐसी कठिनाइयों से मुक्ति दिलवाएं। पहले भी सरकारें लघु उद्योगों के विकास के नाम पर अथवा बेरोजगार युवकों को रोजगार उपलब्ध करवाने की दृष्टि से समय-समय पर ऐसी योजनाएं लागू करती रहीं हैं जिन पर करोड़ों रुपये व्यय होते रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए सरकार की ऋण नीति का स्वागत होना ही चाहिए।

82, साक्षर अपार्टमेन्टस
ए-3, पश्चिम विहार
नई दिल्ली-110063

धन्यवाद की जगह....

ऋषि मोहन श्रीवास्तव

वर्षा सींचती है जिन्हें
उन्हें कुछ निर्दयी कुचलते हैं
हवा, पानी और सूर्य ने
निःस्वार्थ भाव से जिन्हें जीवन दिया
खुले आसमान में जीना सिखाया
उनके अस्तित्व को मिटाने में
लगे हैं कुछ अज्ञानी
आपसे वृक्ष कुछ लेते नहीं
देते ही हैं वे कुछ न कुछ
पत्थर आप मारते हैं उन्हें
उन्होंने तो कभी आपको सताया नहीं
सदा छाया ही दी है
कभी खुश होकर फल भी दिए हैं
स्वच्छ वायु देते हैं आपको
पर्यावरण को बनाते हैं सुहावना
आंखों को देते हैं नई ताजगी
देते हैं मन की बगिया को नई आशायें
फिर भी हम कितने कृतघ्न हैं
उपकार मानना तो दूर
धन्यवाद देने की जगह
हर रहे हैं उनके प्राण

16, वर्मा लेन,
दतिया (मध्य प्रदेश)-475661

देहात विकास के लिये ऋण व्यवस्था का स्वरूप

विनोद अग्रवाल

खेतीबाड़ी हो या दस्तकारी, शादी-ब्याह हो या जन्म-संस्कार हो या मुण्डन-संस्कार हो गांवों में किसान सभी कामों के लिये कर्जा साहूकार से ही लेते थे और एक बार साहूकार के चंगुल में फंसने के बाद किसी-किसी की तो पीढ़ियां ही गुजर जाती थीं कर्ज चुकाने में और अन्त में जर, जमीन और मकान से भी हाथ धोना पड़ता था। आजादी के बाद गांवों में कर्जा दिलाने के लिये सहकारी बैंकों का विकास किया गया और बाद में अन्य व्यवसायिक बैंकों की शाखाएं गांव-गांव में खुलवायी गईं जिससे ग्रामवासी बैंकों से अपनी जरूरत के अनुसार ऋण निश्चित दर पर बिना किसी धोखा-धड़ी के प्राप्त कर सकें।

ऋण संस्थाओं का स्वरूप

हमारे गांव में ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति को तेजी से पूरा करने हेतु अनेक साख संस्थायें एक साथ कार्य कर रही हैं:

सहकारी साख संस्थायें

सहकारिता के क्षेत्र में ग्राम पंचायत स्तर पर ग्राम सेवा सहकारी समितियां बनाई गई हैं, जिनके सदस्य बनने पर किसानों को अपनी जरूरत के अनुसार खेती के लिये आवश्यक खाद, बीज, कीटनाशक व जुताई के लिये अल्पकालीन ऋण व पूरक रोजगार के साधन जैसे पशुपालन, मुर्गीपालन, भेड़, बकरी पालन, बैलगाड़ी आदि के लिये मध्यकालीन ऋण उपलब्ध कराये जाते हैं। ग्रामीण दस्तकार एवं कृषि श्रमिक भी पूरक रोजगार या दस्तकारी के कार्य के लिये ऋण ले सकते हैं। आजकल हमारे देश में कई ग्राम सेवा सहकारी समितियां कार्य कर रही हैं जो जिला-स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक एवं राज्य स्तर पर राज्य शीर्ष सहकारी बैंक से सम्बद्ध हैं।

व्यवसायिक बैंक

प्रारम्भ में व्यवसायिक बैंकों का कार्य क्षेत्र अधिकांशतः शहर ही होते थे। देश में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद इन बैंकों को ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का विशेष उत्तरदायित्व सौंपा गया जिसके फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में व्यवसायिक बैंकों की शाखाओं का बहुत तेजी से विस्तार किया गया। कुछ बैंकों ने तो कृषि विकास शाखाएं एवं ग्रामीण विकास केन्द्र भी खोलें हैं जहां साधारण ग्रामीण शाखाएं 5-10 ग्रामों की तुलना में ऐसी प्रत्येक 50-100 ग्रामों तक में ऋण सेवायें उपलब्ध करा सकती हैं। इन बैंकों द्वारा सभी प्रकार के उत्पादन कार्यों के लिये सब तरह के ऋण कृषकों, कामगारों व व्यवसायिकों को सीधे ही उपलब्ध कराये जाते हैं। इस प्रयोजन हेतु इन बैंकों की सभी ग्रामीण एवं अर्द्धशहरी शाखाओं द्वारा कुछ ग्रामों को गोद लिया जाता है। ऐसे ग्रामों की सभी ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति करने की जिम्मेदारी गोद लेने वाली शाखा की होती है। नवीन नीति के अनुसार अब बैंकों को 5000 रुपये तक के ऋण बिना किसी जमानत या सम्पति को गिरवी रखे ही देने के निर्देश हैं।

भूमि विकास बैंक

कृषि उत्पादन हेतु स्थायी विकास कार्य जैसे कुएं या नलकूप बनाने, पम्प सेट लगाने, भूमि सुधार, ट्रैक्टर या अन्य कीमती उपकरण व मशीनरी खरीदने आदि कार्यों के लिये 6 से 15 वर्ष तक की अवधि के लिये दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराये जाने के लिये अलग से जिला या उपखण्ड स्तर पर सहकारी भूमि विकास बैंक खोले गये हैं। इन बैंकों के सदस्य बनकर कोई भी किसान उपरोक्त कार्यों हेतु कर्जा प्राप्त कर सकता है। ये सदस्य राज्य स्तर पर राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक से जुड़ें हैं।

ग्रामीण बैंक

वर्ष 1975 में बीस सूत्री कार्यक्रम लागू होते ही ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाएं बढ़ाने एवं कमजोर वर्ग को अधिक ऋण उपलब्ध कराने की दृष्टि से राज्यों एवं केन्द्रीय सरकार की साझेदारी में व्यवसायिक बैंकों से ग्रामीण बैंक खोलने को कहा गया।

इन सभी बैंकों द्वारा ग्रामों में बहुत तेजी से शाखाओं का विस्तार व प्रसार किया जा रहा है। ऐसे नये बैंकों में और भी शाखा प्रसार कार्य चालू है और कई बैंक खोलने के प्रस्ताव

विचाराधीन हैं। इन बैंकों द्वारा प्रारम्भ में केवल छोटे किसानों व ग्रामीण कामगारों व कमजोर वर्ग के परिवारों को ही ऋण दिया जाता था पर अब विशेष योजना क्षेत्रों में ये बैंक बड़े किसानों व अन्य लोगों को भी ऋण दे सकते हैं।

गृह निर्माण ऋणदात्री समिति

ग्रामीण क्षेत्रों में मकान बनाने के लिये गृह निर्माण सहकारी समितियों या ग्राम सेवा सहकारी समितियों के सदस्यों को राज्य गृह निर्माण ऋणदात्री समिति द्वारा धन उपलब्ध कराया जाता है।

खादी बोर्ड व कमीशन

ग्रामीण व कुटीर उद्योगों को विकसित करने के लिये खादी कमीशन व राज्य खादी बोर्ड के द्वारा ग्रामीण कामगारों, दस्तकारों एवं बुनकरों को सीधे ही धन उपलब्ध कराया जाता है। साथ ही कुछ राशि सहायता, अनुदान के रूप में भी दी जाती है। विशेषतः हथकरघा, लोहार-गिरी, कुम्हारी उद्योग, ईंट व चूना भट्टा, चर्म उद्योग, पापड़ आदि बनाने से सम्बन्धित गृह-उद्योग, दियासलाई बनाने आदि विभिन्न लघु व कुटीर ग्रामोद्योगों के लिये आवश्यक सहायता व धनराशि पंचायत समिति स्तर पर कार्यरत खादी बोर्ड के पर्यवेक्षक के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

साख सुविधाओं का विस्तार

आजादी के पश्चात किये गये प्रयासों से ग्रामीण क्षेत्रों में साख सुविधाओं का काफी विस्तार हुआ है। व्यवसायिक बैंकों द्वारा शहरी व अर्द्धशहरी क्षेत्रों में दिये जाने वाले ऋणों की मात्रा में बढ़ोतरी होती जा रही है। बैंकों द्वारा ऋण देने के साथ-साथ बैंकों ने ग्रामीण क्षेत्रों से अमानतें (जमा राशि) भी आकर्षित करने में सफलता हासिल की हैं।

पहले बैंकों द्वारा अधिकांशतः ऋण बड़े-बड़े उद्योगों, जमींदारों, किसानों या व्यवसायों को ही दिये जाते थे। राष्ट्रीयकरण के बाद इन बैंकों को प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में और विशेषकर कृषि उत्पादन एवं कमजोर वर्ग के लोगों को अधिकाधिक ऋण देने का उत्तरदायित्व सौंपा गया जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान में सभी बैंकों के आधे से अधिक ऋण प्राथमिकता के आधार पर चुने गये क्षेत्रों को एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग एक चौथाई से अधिक ऋण कृषि कार्यों के लिये दिये जा रहे हैं।

सहकारी बैंकों ने भी ऋण वितरण के क्षेत्र में आशातीत प्रगति की है। पूर्व में सहकारी समितियों से भी केवल बड़े ही किसान लाभान्वित होते रहे हैं। यहां तक कि छोटे किसानों एवं कामगारों को सदस्यता भी नहीं मिल पाती थी क्योंकि सदस्यता कानून में किये गये परिवर्तन से सभी लोगों के लिये केवल प्रार्थना-पत्र देने एवं हिस्सा राशि जमा कराने पर स्वतः ही सदस्यता के अधिकार मिल जाते हैं। इस प्रकार छोटे किसान व कमजोर वर्ग के लोगों के लिये सहकारिता के द्वार खुल गये हैं और अल्प व मध्यकालीन ऋणों का एक तिहाई भाग एवं दीर्घकालीन ऋणों का एक चौथाई भाग कमजोर वर्ग के परिवारों को वितरित करना अनिवार्य भी कर दिया गया है। इससे अब सहकारी बैंकों द्वारा कुल वितरित ऋणों का लगभग आधे से अधिक भाग कमजोर वर्ग को प्राप्त हो रहा है।

ऋण नीति में सरलीकरण

पूर्व में सहकारी बैंकों से भी मध्यकालीन ऋण वांछित मात्रा में भूमिहीन परिवारों को नहीं मिल पाते थे क्योंकि 300 रुपये के ऊपर के ऋणों पर भूमि गिरवी रखने का प्रावधान था। भारतीय रिजर्व बैंक ने सरकार के आग्रह पर गरीबी की रेखा से नीचे भूमिहीनों के लिये भी ऋण उपलब्ध कराने के प्रावधान कर दिये, साथ ही ऋण नीति में अन्य कई महत्वपूर्ण सरलीकरण कर दिये गये हैं।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में साख सुविधाएं

गरीबी की रेखा से नीचे गुजर करने वाले परिवारों को ऊपर उठाने के लिये राज्य में सभी गांवों में समन्वित ग्रामीण विकास योजना चलाई जा रही है, जिसमें गरीब परिवारों को ऋण उपलब्ध कराकर रोजगार के साधन दिये जा रहे हैं। बैंकों द्वारा इन गरीब परिवारों को ऋण देने में विशेष छूट दी जाती है। अत्यन्त गरीब परिवारों को व्यवसायिक बैंक केवल 4-5 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से ऋण देते हैं। सहकारी बैंक भी अन्य लोगों की तुलना में लघु कृषकों से कम ब्याज पर ऋण देता है। राज्य सरकारें ऋण भार कम करने के लिये अनुदान भी देती हैं।

विशिष्ट योजनाएं

ग्रामीण क्षेत्रों में साख सुविधाओं के विस्तार के लिये उपलब्ध प्राकृतिक एवं क्षेत्रीय साधनों को ध्यान में रखते हुये विशिष्ट योजनाएं बनाई जाती हैं। प्रमुखतः लघु सिंचाई, कृषि यंत्र, भू-संरक्षण, फल-उत्पादन, गरीबी उन्मूलन आदि प्रयोजनार्थ विभिन्न क्षेत्रीय विकास योजनाएं बनाकर कृषि, पुनर्वित्त विकास निगम से स्वीकार कराकर पंचायत समिति स्तर पर क्रियान्वित की जाती हैं जिससे बैंकों को अतिरिक्त धनराशि प्राप्त हो सके एवं क्षेत्र विशेष में अधिक तेजी से साख सुविधाओं का विस्तार व आर्थिक विकास हो सके एवं उत्पादन बढ़ सके।

ऋण प्राप्ति का ढंग

सहकारी बैंकों से ऋण प्राप्त करने हेतु सहकारी समिति या भूमि विकास बैंक का सदस्य बनना होता है जिसके लिये सर्वप्रथम कम-से-कम 10 रुपये की कीमत का एक हिस्सा-राशि, ऋण लेते समय व ऋण का 10 प्रतिशत हिस्सा राशि ऋण लेते समय चुकानी पड़ती है। लघु कृषक एवं कमजोर वर्ग के लिये केवल 5 प्रतिशत ही हिस्सा-राशि देनी पड़ती है। आवश्यक प्रयोजन हेतु प्रार्थना-पत्र तैयार करके सरकारी बैंक से स्वीकृत करवाने का दायित्व समिति के व्यवस्थापक, बैंक के पर्यवेक्षक निरीक्षक पर होता है। सरपंच, पंच अपने क्षेत्र के अधिकाधिक परिवारों को सहकारी संस्था के सदस्य बनने को प्रेरित कर ऋण सुविधाएं दिलवाने में मदद कर सकते हैं।

व्यवसायिक बैंकों व ग्रामीण बैंकों के ऋण प्रार्थना-पत्र ग्रामसेवक, पटवारी या बैंक के कर्मचारीगण के द्वारा तैयार करवाए जाते हैं। इस हेतु विकास अधिकारी से भी सहायता प्राप्त की जा सकती है या सरपंच इच्छुक व्यक्तियों को नजदीकी बैंक शाखा के मैनेजर से सम्पर्क कर पहचान करा सकते हैं। प्रत्येक बैंक शाखा द्वारा कुछ गांव गोद लिये हुए हैं, जहां ऐसे गांवों की सभी प्रकार की ऋण आवश्यकता की पूर्ति करने की जिम्मेदारी उक्त बैंक शाखा की होती है।

खादी बोर्ड के ऋण प्रार्थना-पत्र पंचायत समिति कार्यालय में कार्यरत बोर्ड के सुपरवाइजर द्वारा ही तैयार किये जाते हैं। जिससे सरपंच या पंच अपने गांव के कामगारों को ऋण सहायता दिलाने में मदद कर सकते हैं।

ऋण शिविरों का आयोजन

ऋण प्राप्त करने के लिये कई प्रकार के प्रमाणपत्र विभिन्न संस्थाओं से प्राप्त करने होते हैं और इसमें किसान को बहुत समय लगता है और बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है। इस प्रणाली को सरल बनाने के लिये कुछ वर्षों से देश भर में पंचायत मुख्यालयों व बैंक की शाखाओं पर 'ऋण शिविर' लगाए जाते हैं उसमें पटवारी, ग्रामसेवक, विकास अधिकारी, तहसीलदार, सहकारी समिति के व्यवस्थापक, बैंक मैनेजर आदि सभी सम्बन्धित व्यक्ति उपस्थित रहते हैं और वहीं पर विभिन्न प्रकार की पूर्ति एक ही दिन में करवा दी जाती हैं इससे किसानों को दर-दर नहीं भटकना पड़ता और शीघ्रता से ऋण स्वीकृत हो जाते हैं। अतः ऐसे ऋण शिविरों में सरपंच या पंच सक्रिय भाग लेकर अपने गांव के अधिक-से-अधिक लोगों व परिवारों को लाभ पहुंचा सकते हैं।

सरपंचों व पंचों की भूमिका

अपने-अपने गांव को ऋण सुविधाओं का अधिकाधिक लाभ दिलवाने में सरपंच या पंच बहुत बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। उन्हें चाहिए कि:—

1. अपने गांव को ग्राम सेवा सहकारी समिति एवं पंचायत में पूर्ण तालमेल बैठाकर ग्राम की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक साख योजना तैयार करवाएं।
2. अधिकाधिक ग्रामवासियों को सहकारी समितियों एवं भूमि विकास बैंक का सदस्य बनवाएं।
3. गांव में ऋण शिविर का आयोजन करवाकर व्यवसायिक एवं ग्रामीण बैंकों से ऋण प्रार्थना-पत्र बनवाएं।
4. ऋण दिलवाने के पश्चात ऋणी परिवारों की उचित देखभाल करें एवं उन्हें ऋण के सही उपयोग एवं समय पर ऋण अदायगी हेतु मार्ग दर्शन करें।
5. ऋणी परिवार के पशुओं की बीमारी आदि हो जाने पर पशु चिकित्सा सुलभ करवाने हेतु मार्ग-दर्शन दें एवं पशु की मृत्यु हो जाने पर बीमे की रकम प्राप्त करने के लिये प्रमाण-पत्र दें।

अन्त में गांव में साख सुविधाओं के समुचित विस्तार करने से ग्रामों की आर्थिक उन्नति तो होगी ही साथ ही ग्रामों में खुशहाली बढ़ेगी, ग्राम का उत्पादन बढ़ेगा और इस प्रकार हम अपने प्रत्येक ग्राम का विकास कर देश के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे।

1803, फतेहपुरियों का दरवाजा,
चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003

टोंक जिले के ग्रामीण साख में बैंकों का योगदान

ए. के. सलोदिया

निर्धनता एवं ऋणग्रस्तता ग्रामीण भारत की चिरकाल से चली आ रही एक विशेषता है। राजस्थान भारत के उन राज्यों में से एक है जहां पर निर्धनता एवं ऋणग्रस्तता कुछ ज्यादा ही नजर आती है। गरीबी तथा ऋणग्रस्तता का पैमाना प्रति व्यक्ति आय, उपभोग, व्यय या कैलोरी का प्रयोग, कुछ भी माना जाये, लेकिन इस सत्य से हम मुंह नहीं मोड़ सकते कि राजस्थान राज्य भी बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश की तरह ही एक पिछड़ा हुआ, शोषित एवं निर्धन राज्य है।

राजस्थान को 'एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था में एक पिछड़ा हुआ राज्य' माना गया है। लेकिन इस पिछड़े हुए राज्य में भी कुछ क्षेत्र (जिले) साधन सम्पन्न हैं, तथा कुछ क्षेत्र (जिले) निर्धन एवं पिछड़े हुए हैं। यद्यपि पिछड़ेपन एवं गरीबी की अवधारणा एक तुलनात्मक धारणा है फिर भी यह स्पष्ट है कि कोटा, अजमेर तथा जयपुर जिलों की अपेक्षा टोंक, सिरोही, जैसलमेर तथा बाड़मेर आदि जिले निश्चित रूप से पिछड़े हुए माने जा सकते हैं। इस प्रकार टोंक जिले को हम 'पिछड़े हुए राज्य में अधिक पिछड़ा हुआ' जिला मान सकते हैं। यद्यपि टोंक जिले में राज्य सरकार का एक उपक्रम—'राजस्थान टेनरीज लि.' स्थित है लेकिन इस उपक्रम को बीमार हुए एक अर्सा हो गया। यह उपक्रम न केवल एक अनार्थिक इकाई रह गया है अपितु यह सरकार के लिए सफेद हाथी भी सिद्ध हो रहा है। इसी उपक्रम के कारण जिले को सरकार के द्वारा 'शून्य उद्योग जिला' की श्रेणी में शामिल नहीं किया गया है। राज्य के कुल औद्योगिक उत्पादन मूल्य में जिले का योगदान केवल 0.3 प्रतिशत ही है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की भांति टोंक जिले में भी भारी मात्रा में ऋणग्रस्तता दिखाई देती है—ग्राम-वित्त का प्रमुख स्रोत अभी भी गैर-संस्थागत स्रोत ही दिखाई देता है। 1951-52 में जिले के ग्रामीण क्षेत्र के कुल साख का लगभग 95 प्रतिशत भाग गैर-संस्थागत स्रोत से ही प्राप्त होता था। इस स्रोत में भी गांव का साहूकार ही मुख्य स्रोत था जिसके माध्यम से कुल ग्रामीण साख के लगभग 72 प्रतिशत भाग की पूर्ति की जाती थी जबकि व्यापारिक बैंकों के द्वारा कुल ग्रामीण साख का नगण्य भाग (लगभग 0.7 प्रतिशत) की पूर्ति की जाती थी।

वर्तमान समय में यद्यपि जिले के साखपूर्ति के ढांचे में 1951-52 की अपेक्षा महत्वपूर्ण परिवर्तन आ गया है लेकिन फिर भी यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 42 वर्ष बाद भी गैर संस्थागत स्रोत का स्थान महत्वपूर्ण बना हुआ है। वर्तमान में कुछ ग्रामीण साख का लगभग 49.4 प्रतिशत भाग गैर संस्थागत स्रोत से प्राप्त किया जाता है। इसमें भी गांव के साहूकार की ही मुख्य भूमिका देखने को मिलती है। जिसके द्वारा कुल साख के लगभग 28.2 प्रतिशत अंश की पूर्ति की जाती है। शेष 21.2 प्रतिशत अंश की पूर्ति गैर-संस्थागत स्रोत के अन्य साधनों जैसे—व्यापारी, आढ़ती, भू-स्वामी तथा रिश्तेदार आदि से होती है।

जिले के ग्रामीण क्षेत्र की कुल आवश्यक साख की पूर्ति में संस्थागत स्रोत का भाग लगभग 50.6 प्रतिशत है। इस स्रोत में उन संस्थाओं को शामिल किया जाता है जो निजी क्षेत्र से सम्बन्धित नहीं हैं। इनमें प्रायः सरकारी व अर्द्ध-सरकारी संस्थाएं, सहकारी संस्थाएं, बैंकिंग संस्थाएं, निगम तथा बोर्ड आदि को शामिल किया जाता है। संस्थागत स्रोत ग्राम-साख पूर्ति के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्रोत माना जाता है, क्योंकि उनका उद्देश्य गैर-संस्थागत स्रोत की तरह शोषण करना नहीं अपितु ऋण सुविधा, कम ब्याज दर पर उपलब्ध कराने के साथ-साथ लोगों को आवश्यक मार्गदर्शन भी दिया जाता है। संस्थागत स्रोत को ग्रामीण-वित्त पूर्ति की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) गैर-बैंकिंग स्रोत (ii) बैंकिंग स्रोत। गैर बैंकिंग स्रोत के अन्तर्गत सहकारी संस्थाएं, सरकारी विभाग, वित्त निगम, खादी एवं ग्रामीण उद्योग निगम, पंचायत समितियां आदि संस्थाओं को शामिल किया जाता है।

सहकारी संस्थाएं गैर-बैंकिंग स्रोत का प्रमुख अंग हैं। जिले में अधिकांश किसान, मजदूर तथा स्वरोजगार व्यक्ति, सहकारी संस्थाओं के माध्यम से ऋण प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। सहकारी साख ग्राम वित्त का सबसे सस्ता तथा अच्छा स्रोत है। इसमें ग्रामीणों के शोषण का भय भी नहीं रहता तथा ब्याज दर भी अपेक्षाकृत कम होती है। कृषि सम्बंधी ऋण की पूर्ति का अधिकांश भाग सहकारी संस्थाओं के द्वारा ही किया जाता है। वर्तमान समय में जिले में 167 ग्राम सेवा समितियां, 13 सहकारी केन्द्रीय बैंक तथा 167 प्राथमिक कृषि साख समितियों के माध्यम से ग्रामीण वित्त की पूर्ति की जा रही है। 1980-82 की अवधि में जिले की सहकारी संस्थाओं के द्वारा 4.67 करोड़ रुपये तथा जून 1985 तक 3.64 करोड़ रुपये के बराबर ऋण वितरित किया गया।

सहकारी संस्थाओं के अतिरिक्त सरकारी विभागों के द्वारा प्रायः अकाल के समय तकावी के रूप में वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाई जाती है। जिले में राजस्थान वित्त निगम के द्वारा भी ग्राम वित्त में भाग लिया जाता है। निगम के द्वारा 1980-82 के बीच 1.44 करोड़ रुपये तथा जून 1985 तक 10.77 लाख रुपये के ऋण वितरित किये गये। इनके अतिरिक्त खादी ग्रामीण उद्योग तथा पंचायत समितियों के द्वारा भी कुछ मात्रा में ग्रामीण साख की पूर्ति की जाती है। समन्वित ग्रामीण विकास अभिकरण के द्वारा सीमांत कृषक, अनुसूचित जाति तथा जनजाति एवं कमजोर वर्गों को ऋण उपलब्ध करवाने के साथ-साथ 25 से 50 प्रतिशत राशि अनुदान के रूप में दिलवाने की व्यवस्था करता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गैर-बैंकिंग स्रोत में सहकारी संस्थाएं ही ग्रामीण साख में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं, जबकि अन्य गैर-बैंकिंग स्रोत सक्रिय रूप से वित्त पोषण का कार्य नहीं कर रही हैं। जब तक इन स्रोतों के द्वारा सक्रिय रूप से ग्रामीण साख की पूर्ति नहीं की जायेगी तब तक ग्रामीण वित्त पोषण अधूरा ही रहेगा। संस्थागत स्रोत में बैंकिंग स्रोत का महत्व निरन्तर बढ़ रहा है। बैंकिंग स्रोत के अन्तर्गत सभी व्यापारिक बैंक, भारतीय स्टेट बैंक तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को शामिल किया जाता है।

ग्रामीण-साख में बैंकों की रुचि पहली बार तब शुरू हुई जब कि 1955 में स्टेट बैंक की स्थापना की गयी। लेकिन इस क्षेत्र में वास्तविक रुचि 1969 में 14 बड़े बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात ही बढ़ी। बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने का एक प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में साख पूर्ति का विस्तार तथा बैंकिंग सुविधाओं को उपलब्ध करवाना था जिससे ग्रामीण क्षेत्र की निर्धनता को दूर करके उनके जीवन-स्तर को ऊंचा उठाया जा सके। प्रारंभ में जिले के ग्रामीण क्षेत्र के विकास हेतु साख-पूर्ति बैंकिंग संस्थाओं के द्वारा नगण्य मात्रा में की गयी और वह भी सम्पन्न किसानों को। उदाहरण के लिए 1951-52 में तत्कालीन ग्रामीण साख का एक प्रतिशत से भी कम (0.7 प्रतिशत) भाग की पूर्ति बैंकिंग संस्थाओं द्वारा की गयी। लेकिन 1969 के बाद से इस अंश में निरंतर वृद्धि हो रही है।

वर्तमान में जिले में 9 बैंकिंग संस्थाओं की 50 शाखाएं कार्यरत हैं। इन बैंकों में भारतीय स्टेट बैंक, स्टेट बैंक आफ बीकानेर एंड जयपुर, बैंक आफ बड़ौदा, यूनाइटेड कामर्शियल बैंक, पंजाब नेशनल बैंक, यूनियन बैंक आफ इण्डिया, सेंट्रल बैंक आफ इण्डिया, द बैंक आफ राजस्थान लि. तथा अरावली क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हैं। जिले की अग्रणी बैंक—बैंक आफ बड़ौदा है।

बैंकिंग संस्थाओं द्वारा जिले की ग्रामीण-वित्त की पूर्ति—अग्रणी बैंक, बैंक आफ बड़ौदा के नेतृत्व में जिला साख योजनाएं तथा वार्षिक कार्यक्रम योजनाओं के माध्यम से किया जाता है। अब तक तीन जिला साख योजनाएं पूर्ण की जा चुकी हैं तथा चौथी जिला साख योजना कार्यशील है। 1980-82 की अवधि के लिए बैंकिंग संस्थाओं के द्वारा प्राथमिक क्षेत्र सहित ग्राम साख के संबंध में 4.10 करोड़ रुपये की राशि के बराबर साख पूर्ति करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया लेकिन 3.63 करोड़ रुपये की राशि के बराबर ही वास्तविक रूप से ऋण वितरित किया गया। उपलब्धि के रूप में यह निर्धारित लक्ष्य का लगभग 88.5 प्रतिशत है। इसमें भी आधे से अधिक भाग (लगभग 57 प्रतिशत) की पूर्ति अकेले बैंक आफ बड़ौदा के द्वारा की गयी। जबकि दूसरा स्थान स्टेट बैंक आफ बीकानेर एंड जयपुर (32 प्रतिशत) का रहा।

जिले की तृतीय साख योजना के अन्तर्गत 1983-85 की अवधि के लिए 2.96 करोड़ रुपये की राशि के बराबर साख पूर्ति का लक्ष्य निर्धारित किया था जबकि वास्तविक उपलब्धि 5.77 करोड़ रुपये के बराबर रही। यह सफलता निर्धारित साख लक्ष्य का करीब दो गुना अधिक अर्थात 196.5 प्रतिशत रही। साख पूर्ति की इस उपलब्धि में बैंक आफ बड़ौदा का योगदान सर्वाधिक (लगभग 43.0) प्रतिशत रहा। साख वित्त की यह पूर्ति न केवल जिले के ग्रामीण क्षेत्र में कृषि से सम्बन्धित गतिविधियों के लिए की गयी अपितु लघु-कुटीर उद्योग,

स्वरोजगार व्यक्तियों, फुटकर व्यापारियों, अनुसूचित जाति एवं जनजाति सहित कमजोर वर्ग से सम्बंधित सभी लोगों को उपलब्ध कराई गई।

बैंकिंग संस्थाओं के द्वारा जो ग्राम वित्त की पूर्ति ग्रामीण क्षेत्र में प्राथमिक क्षेत्र सहित वितरित की है यह राशि कुल बैंक-ऋणों का लगभग 40 प्रतिशत भाग है। यह प्रसन्नता का विषय है कि ग्रामीण साख जिसे बैंकिंग संस्थाओं के द्वारा उपेक्षित क्षेत्र माना गया था, अब यह दृष्टिकोण बिल्कुल बदल गया है। अब बैंकिंग संस्थाएं ग्रामीण क्षेत्र की सहायता करने के लिए अपने आपको वचनबद्ध अनुभव करती हैं। इस प्रकार का परिवर्तन ग्राम-वित्त की दृष्टि में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

ग्राम-वित्त में यद्यपि अभी भी साहूकारों का महत्वपूर्ण स्थान है, लेकिन इस क्षेत्र में उनका एकाधिकार निश्चय ही समाप्त हो गया है। लेकिन समय पर ऋण उपलब्ध नहीं होने के कारण ग्रामवासियों को पुनः गांव के साहूकारों की शरण में ही जाना होता है। ऋण स्वीकृति की औपचारिकताएं अधिक होने के कारण कभी-कभी तो ऋण-स्वीकृति मे 3-4 माह लग जाते हैं।

अशिक्षा ग्रामीण साख पूर्ति में मूलभूत बाधा है। अशिक्षा के कारण ही साहूकार तथा बैंक कर्मचारी नाजायज फायदा उठाते हैं। ऋण शर्तें तथा प्रक्रिया की जानकारी, इसके अभाव में ग्रामवासियों को पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाती। अनुत्पादक कार्यों में साख-वित्त का प्रयोग एक और महत्वपूर्ण समस्या है। चूंकि ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति कमजोर होती है तथापि एक मुश्त राशि जब उन्हें मिल जाती है तो इसका प्रयोग धार्मिक-सामाजिक कार्यों-जन्मोत्सव, मृत्युभोज, विवाह आदि में कर दिया जाता है। परिणामस्वरूप ऋण प्राप्ति का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता।

विभिन्न बैंकिंग संस्थाओं, प्रशासनिक अभिकरणों तथा निगमों के बीच तालमेल का अभाव देखने को मिलता है। यदि किसी भी कारणवश इन संस्थाओं में मतभेद या लापरवाही हो जाती है तो इसका दुष्परिणाम ग्रामीणों को वहन करना पड़ता है।

अवधि पर ऋणों की वसूली भी एक महत्वपूर्ण समस्या मानी जा सकती है क्योंकि इसके कारण बैंकिंग ऋण-स्रोत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कई बैंकिंग संस्थाएं कर्मचारियों की कमी तथा वाहन सुविधाओं के अभाव में यथासमय ऋण-पूर्ति के बाद अनुवर्ती कार्यवाही करने में असमर्थ होती हैं अंततः बकाया बैंक वसूली कम हो पाती है। कभी-कभी ग्रामीण शिल्पियों, कारीगरों, स्वरोजगार व्यक्तियों को उचित मात्रा में ऋण प्रदान कर दिया जाता है लेकिन समय पर उन्हें प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान नहीं की जाती है। कारीगरों तथा शिल्पियों द्वारा निर्मित माल के विपणन की भी उचित सुविधा के अभाव में इन्हें कस्बों के मध्यस्थों के माध्यम से निर्मित माल का विपणन करना होता है। फलतः इनके लाभ का अधिकांश भाग मध्यस्थों की जेब में चला जाता है। उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त अन्य समस्याएं भी ग्रामीण-साख-पूर्ति में बाधक बनती हैं। जैसे बैंकों से ऋण प्राप्त करने में निहित स्वार्थों का प्रभुत्व दिखाई देना, ग्रामीणों को ऋण-कार्यक्रमों की जानकारी का अभाव तथा ऋणों के पुस्तकीय समायोजन की प्रवृत्ति का होना आदि।

उपाय

उपरोक्त समस्याओं के कारण ग्रामीण साख के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो पाती। फलतः ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक-सामाजिक प्रगति में बैंक के योगदान का जितना प्रभाव पड़ना चाहिए उतना नहीं पड़ पाता। अतः इन समस्याओं को दूर करने के लिए कुछ सुझावों पर ध्यान देना आवश्यक है।

सर्वप्रथम ग्रामीण क्षेत्र की अशिक्षा के कलंक को दूर किया जाना चाहिये, विशेषकर प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम पहले से ही चलाया जा रहा है, लेकिन इसकी उपलब्धि अपेक्षा से बहुत कम है।

साख-वित्त का प्रयोग अनुत्पादक कार्यों में नहीं किया जाए इसके लिए ग्रामवासियों को उपभोक्ता ऋण पर्याप्त मात्रा में दिए जाने चाहिए। इससे उनकी आय में वृद्धि होने के कारण ऋणों का प्रयोग अनुत्पादक कार्यों में नहीं किया जायेगा। ऋण प्रक्रिया को सरल एवं स्पष्ट बनाया जाना चाहिए जिससे सामान्य साक्षर व्यक्ति भी इसकी शर्तें व प्रक्रिया के बारे में आसानी से जान सकें। प्रपत्रों की संख्या एवं औपचारिकताओं में कमी की जानी चाहिए। मांगी गई ऋण मात्रा को मद्देनजर रखते हुए राशि की स्वीकृति देनी चाहिए। पर्याप्त मात्रा में ऋण उपलब्ध नहीं होने के कारण ग्रामीण साहूकार के चंगुल में फंस जाता है।

बैंकिंग संस्थाओं को अपने स्टाफ में उस सीमा तक वृद्धि करनी चाहिए जिस सीमा तक वे ऋण के पश्चात की जाने वाली अनुवर्ती कार्यवाही समय पर कर सकें। इससे समय-समय पर किये जाने वाले अंकेक्षण व निरीक्षण के कार्यों को भी गति मिलेगी। ग्रामीण कारीगरों द्वारा निर्मित माल के विपणन हेतु सरकार द्वारा तहसील स्तर पर सरकार द्वारा प्रायोजित निगम या विपणन प्रकोष्ठ की स्थापना की जानी चाहिए।

(शेष पृष्ठ 43 पर)

पंचायती राज तथा उसका प्रशासकीय ढांचा

डा. (श्रीमती) बीणा मेहता

जिस पंचायती राज का हम आधुनिक समय में चिंतन कर रहे हैं उस रूप में तो नहीं, पर अपने परम्परागत रूप—यह 'पंचायत' के रूप में, भारत में प्राचीन समय से चली आ रही व्यवस्था है। वैदिक काल से लेकर मराठा काल तक, यानि ब्रिटिश शासन के पहले तक इसने भारत के गांवों को सम्पन्नता के प्रतीक बनाये रखा। उस समय भारत में पंचायतें थीं, राजतंत्र व्यवस्था होते हुए भी राजाओं ने उन्हें व्यापक शक्तियां दी थीं। इस युग में उनके सफल संचालन के पीछे भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत में पंचायतों की यह स्थिति एवं अनवरत क्रम हमें विभिन्न कालों में देखने को मिलता है। भारत चिरकाल से ही ग्रामीण समुदाय या पंचायतों का स्थल रहा है। यह माना जाता है कि यह पद्धति पहली बार राजा पृथु द्वारा आरंभ की गई थी।

वैदिक काल में शासन की इकाई ग्राम थी। केन्द्रीय शासन के अधिकार सीमित थे, अथवा शासन का स्वरूप विकेन्द्रीकृत था। ग्राम के मुखिया को ग्रामिणी कहा जाता था।

उत्तर वैदिक काल में, रामायण एवं महाभारत में भी पंचायतों की महत्वपूर्ण स्थिति देखने को मिलती है। ग्राम के शासक को ग्रामिणी की जगह ग्रामिक कहा जाने लगा। उत्तर वैदिक काल में राष्ट्रीय जीवन इन विभिन्न स्वायत्त शासनों में अपने आपको अभिव्यक्त करता था। ऐसा करने से वास्तव में उन्होंने वैदिक परम्पराओं, सामुदायिक संस्थाओं को आगे बढ़ाया।

बौद्ध काल में पंचायतों के बारे में जातक कथाओं से पता चलता है कि ग्राम के शासक को ग्राम योजक कहा जाता था।....वह या तो पितृक्रम से राज कर्मचारी नियुक्त किया जाता था, अथवा ग्राम की सभा उसका निर्वाचन करती थी, सभा ग्राम संगठन का एक मनोरंजक और महत्वपूर्ण अंग थी, जिसमें ग्राम वृद्ध बैठते थे, जो कुटुम्ब के सबसे बड़े बूढ़े हुआ करते थे।

मौर्य काल में ग्रामीण व्यवस्था अत्यंत उत्कृष्ट अवस्था में थी। तत्कालीन यूनानी राजदूत मैगस्थनीज, जो चन्द्रगुप्त के दरबार में रहता था, उसके लेखों से इस विषय के बारे में पता चलता है। उस समय ग्राम में ग्राम संघ या ग्राम संस्था होती थी। ये ग्राम संघ अपराधियों को दंड देते थे, जुर्माना वसूल करते थे।

इस तरह वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल में पंचायतें शासन की आधारशिला रही हैं। उस समय उनके पास शक्ति थी। ग्राम संस्थायें अपने सीमित क्षेत्र में राज्य के प्रायः सभी अधिकारों का प्रयोग करती थीं। वे शासन संविधान का एक अभिन्न अंग समझी जाती थी। उनके पास सामूहिक सम्पत्ति होती थी, जिसे वे सार्वजनिक हित के लिए बेच अथवा बंधक रख सकती थीं। उन्हें विस्तृत न्यायिक अधिकार थे।

मुस्लिम काल में जिन मुस्लिम राजाओं ने भारत पर अपना आधिपत्य जमाया उन्होंने पंचायत व्यवस्था में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया। अफगान एवं कुछ शासकों ने इस ओर विशेष ध्यान केन्द्रित किया था कि भारतीय ग्रामीण व्यवस्था एवं उसकी प्रथाओं में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाये। फलस्वरूप भारतीय जीवन का आर्थिक एवं सामाजिक ढांचा पहले की भांति कायम रहा। इस व्यवस्था की समाप्ति तो केवल ब्रिटिश काल में ही हो सकी।

जैसा कि सर चार्ल्स मैटकाफ का मत है कि शासक बदले, पर ग्रामीण संस्थाओं में कोई अंतर नहीं आया उसी प्रकार से मराठा काल में यही व्यवस्था कायम रही। "मराठा काल के अनेक कागजों से ज्ञात होता है कि शिवाजी राजाराम और शाहू आदि जो मामले उनके पास सीधे लाये जाते थे, उन्हें स्वयं न सुनकर ग्राम पंचायत के पास भेज दिया करते थे।"

निष्कर्षतः वैदिक युग से मराठा काल तक पंचायतों ने सफलतापूर्वक कार्य किया। इसके पीछे हमारे देश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का बहुत अधिक योगदान रहा। पंचायतों में समाज के माने हुए ईमानदार, बड़े-बूढ़े व्यक्तियों को

सम्मिलित किए जाने की परम्परा थी। चूँकि भारतीय समाज में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में अपने से बड़ों के आदर एवं उनकी आज्ञा का पालन करने की परम्परा रही है और यही तो तत्व है, जिसने पंचायतों को 'बाध्यकारी शक्ति' की स्थिति प्रदान की थी। इसके साथ ही भारतीय जीवन के कुछ जीवन मूल्य हैं, जिसके कारण पंच को परमेश्वर की संज्ञा देकर उसकी आज्ञाओं का पालन किया जाता था।

विचारों की स्वतंत्रता, जो हमारी संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है, जिसके ऊपर हमारा प्रजातंत्र अभी तक टिका हुआ है, इसने भी पंचायतों के सफल संचालन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्राचीन भारतीय शासन पद्धति पर लिखने वाले अनेक विद्वानों ने अपनी रचनाओं में ऐसे कई उदाहरण दिए हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि शक्ति के विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति भारतीय राजाओं की रही है। भारत में राजतंत्र होते हुए भी राजाओं ने शक्ति का केन्द्रीयकरण नहीं किया, अपितु इन स्थानीय संस्थाओं को शक्तियों का उपयोग करने दिया। राजतंत्र की केन्द्रीकृत व्यवस्था में भी विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति इन संस्थाओं की सफलता के पीछे एक बहुत बड़ा तत्व रही है। "ग्राम पंचायतों या निर्वाचित सभा में व्यापक कार्यपालिका एवं न्यायपालिका संबंधी शक्तियां थीं, राजा के अधिकारियों द्वारा इनके अधिकारियों को अति सम्मान दिया जाता था। भूमि वितरण पंचायतें करती थीं, कर भी वसूल करती थीं।"

पंचायतें हमारी संस्कृति का एक उल्लेखनीय तत्व बन गई हैं, इसीलिए इसे छोड़ने का हमने हमेशा विरोध किया, हमें अपनी संस्कृति पर गर्व है, इसकी परतें हमारे जीवन में गहराई तक पैठ गई हैं। इस बात ने भी पंचायतों की सफलता में एक अहम् भूमिका निभाई।

अंग्रेजों का भारत में उद्देश्य शोषण करना था, अतः पंचायतों की व्यवस्था में उपरोक्त उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु परिवर्तन किया गया। शासन संचालन के लिए अधिकतर कर्मचारियों की नियुक्ति की गई। पंचायत के अधिकार इनके हाथों में आना प्रारंभ हो गए।

लार्ड रिपन जिसे स्थानीय स्वशासन का जनक माना जाता है, स्थानीय शासन संस्थाओं का निर्माण मुख्यतः सार्वजनिक एवं राजनैतिक शिक्षा का विकास करना है। इस दृष्टिकोण से करना चाहते थे। लार्ड रिपन के प्रभाव के आधार पर भारत में स्वायत्त संस्थाओं का निर्माण प्रांतों ने किया, पर एकरूपता का अभाव रहा। इनकी असफलता का एक कारण....स्थानीय निकायों पर अत्यधिक बढ़ता नियंत्रण था।

लार्ड कर्जन की केन्द्रीयकरण की नीति के फलस्वरूप इन संस्थाओं पर सरकारी वर्चस्व अधिक हो गया था।

विकेन्द्रीकरण आयोग ने ग्राम पंचायतों को स्थापित करने की सिफारिश की। उसने कहा कि इन पंचायतों को कुछ प्रशासकीय अधिकार भी होना चाहिए।

1909 से 1919 तक पंचायतों के बारे में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। कांग्रेस बार-बार सुधारों की मांग कर रही थी। 1917 में अध्यक्षीय भाषण में श्रीमती ऐनी बेसेंट ने कहा कि स्वराज्य ग्राम जीवन सरकार की एक इकाई के रूप में पंचायत की पुनः स्थापना पर ही निर्भर करता है।

1920 में असहयोग आंदोलन के रचनात्मक पहलू में गांधीजी ने पंचायतों की स्थापना पर बल दिया। 1937 में स्वायत्त शासन 11 प्रांतों ने शुरू किया। अधिकांश प्रांतों में कांग्रेस बहुमत में आई। कांग्रेस का उद्देश्य ग्रामोत्थान करना था तथा पंचायत का विकास करना था, इसलिए इस दिशा में सक्रिय कदम उठाये गये। "इस काल में प्रांतों ने स्थानीय शासन संस्थाओं को उपयुक्त बनाने के लिए अन्वेषण कार्य चालू किया जिससे वे स्थानीय कार्यों को कर सकें।"

ब्रिटिश सरकार की दबाव एवं दमनात्मक तथा केन्द्रीयकरण की नीति के कारण पंचायतों की स्थिति बहुत कमजोर रही।

15 अगस्त 1947 की पुनीत बेला में जब भारत स्वतंत्र हुआ तब भारत के नेताओं के सामने सबसे बड़ी समस्या शासन संचालन के लिए ऐसे संविधान का निर्माण करना था, जो लोकतंत्र पर आधारित हो। उद्देश्यों के समय संविधान सभा में जवाहरलाल नेहरू ने बोलते हुए कहा था—"ये सदन को निश्चित करना है कि इस प्रजातंत्र को कौन-सा स्वरूप देना है, मुझे आशा है, पूर्णतम प्रजातंत्र की।" किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि लोकतंत्र की सबसे छोटी इकाई पंचायतों की स्थापना के बारे में, जो सदियों से भारत के शासन संचालन की आधार रही है, संविधान सभा ने काफी समय तक उस पर विचार विनिमय ही नहीं किया।

सबसे पहले गांधीवादी चिंतकों ने संविधान सभा में आवाज उठाई कि हम गांधीवाद के आधार पर संविधान का निर्माण कर रहे हैं, किन्तु गांधीवाद के आधारभूत तत्व पंचायत को संविधान में कहीं भी स्थान नहीं दिया गया। गांधीजी का विचार था "मेरे ग्राम स्वराज्य के रूप में ग्राम पूरी तौर पर गणतंत्र होगा।....गांव का शासन चलाने के लिए हर साल गांव के पांच आदमियों की पंचायत चुनी जायेगी। इसके लिए खास निर्धारित योग्यता वाले गांव के बालिग स्त्री-पुरुषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन सकें। इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे।" संविधान सभा के एक

सदस्य अरुण चन्द गुहा ने संविधान सभा में कहा "सम्पूर्ण संविधान के मसविदा में हम कांग्रेस के दृष्टिकोण, गांधीजी के सामाजिक, आर्थिक दृष्टकोण को कहीं भी नहीं पाते।" डा. आम्बेडकर इसके पक्ष में नहीं थे। उनके विचारों का कई सदस्यों ने विरोध किया फलतः संविधान सभा का इस ओर ध्यान गया। सबसे पहले पंचायतों की स्थापना की ओर श्रीमन्नारायण ने आवाज उठाई। राज्य के नीति निर्देशक तत्वों पर संविधान सभा में विचार करते समय डी. के. संथानम ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया, कि इन तत्वों में एक तत्व यह भी होना चाहिए कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करे और उनको ऐसे अधिकार भी प्रदान करे कि वे स्वायत्त शासन प्रबंध सुचारू रूप से कर सकें। परिणामस्वरूप डा. आम्बेडकर को यह मानना पड़ा तथा राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में पंचायत को स्थान दिया गया।

यह गांधीवाद का ही प्रभाव था कि राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में पंचायतों को स्थान दिया गया। "राज्य ग्राम पंचायतों के निर्माण के लिए कदम उठायेगा और उन्हें इतनी शक्ति एवं अधिकार प्रदान करेगा, जिससे कि ये स्वशासन की एक इकाई के रूप में कार्य कर सकें।"

संविधान सभा में पंचायत की स्थापना के ऊपर बहस का अध्ययन करने पर यह कहना उचित होगा कि पंचायतें प्राचीन संस्थाएं रही हैं, उन्होंने प्राचीन समय में सफलतापूर्वक कार्य किया है। इस विश्वास के कारण तथा गांधीवादी चिंतन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होने के कारण ही संविधान में रखने की मांग की गई।

संविधान में ग्राम पंचायत को राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में स्थान देकर, उन्हें 'ऐच्छिक' स्थिति में रखा गया है। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि राष्ट्र के निर्माण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका हम समझते होते तो उन्हें यह दयनीय स्थिति प्रदान न की जाती।

इकाई के बाद गांव स्तर पर पंचायतों की स्थापना के बारे में ही संविधान प्रतिपादित करता है। जिले, तहसील स्तर की व्यवस्थाओं के बारे में संविधान में कुछ नहीं कहा गया जबकि जिला प्रशासन की इकाई ब्रिटिशकाल में भी थी और वर्तमान में भी है।

पंचायतों को सिर्फ नागरिक कार्य सौंपे गए। इससे ही यह स्पष्ट है कि हमारा दृष्टिकोण यह नहीं रहा कि वह विकास के कार्यों की संस्था है।

पंचायतों को संविधान में 'ऐच्छिक' स्थान दिये जाने का यह दुष्परिणाम है कि स्वतंत्रता के 42 सालों बाद भी राष्ट्र निर्माण की इन संस्थाओं की हमें आवश्यकता थी, उन्हें हम वैसी परिपक्व अवस्था में अभी भी हम भारत में नहीं पा रहे हैं। यह हमारी इसी भूल का ही परिणाम है कि पूरे भारत में अभी भी कुछ राज्य हैं, जैसे लक्षद्वीप, मिजोरम, पांडिचेरी जहां पर ग्राम पंचायतों की अभी तक स्थापना नहीं की गई है।

वास्तव में पंचायतों की ग्रामीण विकास में समग्र भूमिका सामुदायिक कार्यक्रम की असफलता के बाद ही समझ में आ पाई। 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम शासन द्वारा संचालित ग्रामीण विकास का सर्वप्रथम कार्यक्रम था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरंभ इसलिए किया गया था ताकि आर्थिक नियोजन एवं सामाजिक पुनरुद्धार की राष्ट्रीय योजनाओं के प्रति देश की ग्रामीण जनता में सक्रिय रुचि पैदा की जा सके। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के कारण ग्राम पंचायत विभाग को सामुदायिक विकास मंत्रालय के अधीन कर दिया गया। पंचायतों को इस कार्यक्रम की योजनाओं को पूर्ण करने में योगदान प्रदान करने को कहा गया। इस तरह सामुदायिक विकास कार्यक्रम के लिए पंचायतें एक साधन के रूप में काम में लाई गईं। सामुदायिक विकास कार्यक्रम में काफी खर्च हो चुकने के पश्चात् अपेक्षित सफलता न मिली तब भारत सरकार ने बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल इसकी जांच के लिए 1957 में नियुक्त किया, जिसे यह कार्य सौंपा गया कि वो उन संस्थाओं को बतलाये, जिसके माध्यम से जनभागीदारी बढ़ाई जा सके, क्योंकि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता का एक प्रमुख कारण अपेक्षित जनभागीदारी का अभाव था।

बलवंतराय मेहता समिति ने जनभागीदारी को प्राप्त करने के लिए जिन संस्थाओं की सिफारिश की उन्हें 'पंचायती राज' कहा था। जिस आदर्श या सिद्धांत के ऊपर आधारित होंगी, उसे लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण कहा गया।

पंचायती राज को एक नये सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया, क्योंकि इसका अर्थ था, स्वीकृति और सर्वसम्मति। वह भारत के प्राचीन सांस्कृतिक ढांचे में ठीक बैठता था। प्रो. इकबाल नारायण ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण को जनता के सहयोग के माध्यमों में से एक माध्यम माना है। इस लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण का अर्थ है—जनता का सहयोग। इसमें सत्ता का ऊपर से नीचे के स्तर पर विसर्जन, नीचे के स्तर पर योजना का निर्माण, क्रियान्वयन जनता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रबंध करने का अधिकार।....क्षेत्रीय या इकाई स्तर पर किये जाने वाले कार्यों के ऊपर के हस्तक्षेप को सीमित करना।

निष्कर्षत: लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण जनता द्वारा निर्मित संस्थायें एवं उन्हें सत्ता के विसर्जन के ऊपर आधारित चिंतन है।

बलवंतराय मेहता समिति ने ग्रामीण शासन पद्धति को सफल बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये—

(1) जिला स्तर पर उच्चोत्तर क्रम में निर्मित जनता की प्रतिनिधि संस्थाओं को स्थानीय प्रबंध की अधिकाधिक शक्तियों का पूर्ण हस्तांतरण न कि केवल उनका प्रत्यायोजन किया जाना।

(2) जनता के प्रतिनिधियों से निर्मित लोकतांत्रिक संस्थाओं पर संगठन जिसके अंतर्गत....ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायतों, राष्ट्रीय प्रसार सेवा खंड स्तर पर ग्राम पंचायतों के प्रधानों से निर्मित पंचायत समितियां, जिला स्तर पर जिला बोर्डों के स्थान पर पंचायत समितियों के अध्यक्षों तथा प्रतिनिधियों से निर्मित जिला परिषद की स्थापना करना।

(3) पंचायत समिति को स्थानीय स्वायत्त शासन तथा सामुदायिक योजनाओं के कार्यान्वयन की अधिकाधिक शक्ति, उसके साधनों को सुदृढ़ बनाना। जिला परिषद पंचायत समितियों के ऊपर समन्वयकर्त्ता एवं निरीक्षणात्मक नियंत्रण रखे। इसके पास कोई कार्यकारिणी शक्ति रहे।

(4) ग्राम पंचायतें अपनी सीमा के अंतर्गत कार्यों का सम्पादन करती हैं। पंचायत समिति का सहयोग मिलता रहे। पंचायत समितियों को ग्राम पंचायत के ऊपर निरीक्षण, अधीक्षण और मार्गदर्शन की शक्ति रहे।

पंचायत का कार्यकाल 5 वर्ष का होना चाहिए ताकि वह जिला परिषद के कार्यकाल के अनुकूल हो सके।

निष्कर्षत: इस तरह मेहता समिति की रिपोर्ट के आधार पर पंचायतीराज व्यवस्था का जन्म हुआ, जिसे प्राचीन समय से चली आ रही पंचायतों की जगह नई व्यवस्था की स्थापना कहना ज्यादा उचित होगा। पंचायतें बहुत पुराने जमाने में विद्यमान थीं, मगर वर्तमान पंचायती संस्था इस माने में नई है क्योंकि उनको काफी अधिकार, साधन और जिम्मेदारियां सौंपी गई हैं।

पंचायतीराज के पीछे, जो विचारधारा निहित है, वह यह है कि गांवों के लोग अपने शासन का उत्तरदायित्व स्वयं संभालें। लोग अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से स्थानीय नीतियों का निर्धारण करने लगे और सातवें दशक में पंचायतीराज का महत्व घटने लगा। पंचायतीराज के प्रति उदासीनता आने लगी जिसके लिए हम निम्नलिखित कारणों को उत्तरदायी मान सकते हैं—

1966-67 में फसलों के खराब होने के कारण, अनाज की कमी होने के कारण, सामुदायिक विकास कार्यक्रम की प्राथमिकताओं में परिवर्तन किया गया। इस कारण कृषि के उत्पादन पर बहुत अधिक महत्व दिया जाने लगा। ग्रामीण विकास का व्यापक विचार केवल कृषि उत्पादन बढ़ाने की परियोजना तक ही सीमित माना जाने लगा। पंचायतीराज का महत्व कृषि उत्पादन को बढ़ाने वाली एजेंसी के रूप में देखा जाने लगा।

धीरे-धीरे ऐसे नवीन राजनीतिक नेता सामने आने लगे जिनका गांधीवादी चिंतन में कम विश्वास था।

नवीन आविष्कृत होने वाली प्रौद्योगिकी के कारण केन्द्रीय सरकार ने विशिष्ट कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए स्वतंत्र प्रशासनात्मक संगठनों का विकास किया। इस नीति के कारण पंचायतीराज व्यवस्थाओं की उपेक्षा हो गई। सघन कृषि विकास कार्यक्रम, समादेश क्षेत्र विकास परियोजना, सूखा क्षेत्र कार्यक्रम आदि केन्द्र सरकार की सहायता से चलाये जाते थे और उनका पंचायतीराज संस्थाओं से कोई संबंध न था। इस समय यह पद्धति प्रचलित हो गई कि ग्रामीण विकास में नई प्रौद्योगिकी जनता तक पहुंचाने के लिए नौकरशाही का इस्तेमाल किया जाये और जनता द्वारा निर्वाचित संस्थाओं को इनमें बाहर रखा जाये। नौकरशाही का पंचायतीराज के प्रति अनुकूल रुख नहीं रहा, क्योंकि राजनैतिक नेताओं को कार्यों में बाधक माने जाने लगा।

देश के विकास के लिए शासन सक्रिय ग्रामीण विकास की आवश्यकता गम्भीरता से महसूस करने लगा था। इसके लिए आवश्यक था कि पंचायतीराज संस्थाओं को सक्षम बनाया जाये। अत: 1977 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। जिसका उद्देश्य विकास की आवश्यकताओं तथा जनता की वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान रखते हुए, उनके अनुसार ही अपने कार्यक्रम को लागू करना था। इस प्रकार देश की जड़ों तक लोकतंत्र प्रवेश करेगा। इससे जनता के नीचे से नीचे स्तर पर स्थित लोग प्रशासन से सम्बद्ध हो जायेंगे। पंचायतीराज संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय लोग न केवल नीति का निर्माण करेंगे अपितु उसके क्रियान्वयन एवं प्रशासन का नियंत्रण एवं मार्गदर्शन करेंगे।

द्वितीय आम चुनाव में केरल एवं उड़ीसा को छोड़कर बाकी राज्यों में कांग्रेसी सरकारें बनी थीं, अत: केन्द्र की कांग्रेसी

सरकार बकाया राज्यों में सरलता से बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर बना पंचायती राज लागू करवा सकती थी। इससे यह बात स्पष्ट है कि शासन ने पंचायतीराज की स्थापना की अनिवार्यता को कभी भी गंभीरतापूर्वक नहीं सोचा।

बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों के बाद पंचायतीराज को तीन दृष्टिकोण से देखा जाने लगा। प्रथम दृष्टिकोण के अनुसार इसे राज्य सरकार का ऐसा अंग समझा जाता है जो सामुदायिक विकास कार्यक्रम को और राज्य द्वारा सौंपी गई अन्य योजनाओं को सम्पन्न करने का साधन है। दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार इन्हें स्थानीय स्वशासन की संस्थायें समझा जाने लगा। तीसरे दृष्टिकोण याने सर्वोदयवादियों के लिए वर्तमान शोषण पद्धति का स्थान ग्रहण करने वाली यह एक नई सामाजिक व्यवस्था है।

राज्य सरकार एवं नौकरशाही के लिए इसकी भूमिका सामुदायिक विकास के साधन के रूप में रही। ग्रामीण राजनीतिज्ञों ने उसे स्थानीय स्वशासन की संस्था के रूप में देखा।

इन विभिन्न दृष्टिकोणों के परिणास्वरूप अभी तक हम लोग इसकी वास्तविक भूमिका नहीं समझ पाये हैं, और इस कारण भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में उसे उचित स्थान न दे पाये, न ही ये संस्थायें अपेक्षित भूमिका भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में दे पाई हैं। उसके लिए अपेक्षित तकनीकी, जो नियोजन तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए आवश्यक है, को ध्यान में रखकर उसके लिए अपेक्षित ढांचा बतलाना। अशोक मेहता समिति की प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार थीं—

(1) जिला परिषद को समस्त विकास कार्यों का केन्द्र बिंदु माना जाये। जिला परिषद ही जिले का आर्थिक नियोजन का कार्य करेगी, समस्त विकास कार्यों में सामंजस्य स्थापित करेगी।

(2) जिला परिषद के बाद मंडल पंचायतों को विकास कार्यक्रम का आधारभूत संगठन बनाया जाना चाहिए। मंडल पंचायतों का गठन कई गांवों को मिलाकर होगा।

(3) ग्राम स्तर पर जनता ऐसी ग्राम समितियों के माध्यम से मंडल पंचायतों के कार्यों में सहयोग देगी। जब तक मंडल पंचायतों का निर्माण नहीं किया जाता तब तक वर्तमान गांव पंचायतों का संघ बनाना वांछनीय हो सकता है।

(4) इन संस्थाओं के निर्वाचनों में राजनैतिक दलों को खुले तौर पर अपने चुनाव चिह्नों के आधार पर भाग लेने की स्वीकृति दी जाये।

अशोक मेहता समिति की सिफारिशें इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं कि निचले स्तर से नियोजन की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए, जिस अधिकार सम्पन्न जिला स्तर पर पंचायतीराज संस्था की आवश्यकता है, उनकी पूर्ति करती है।

विकास के दृष्टिकोण से वृद्धि, विकास केन्द्र की धारणा के आधार पर जिस प्रकार की पंचायतीराज संस्था की आवश्यकता है उनको ध्यान में रखते हुए मंडल पंचायत की सिफारिश यह समिति करती है।

किन्तु ग्राम पंचायत की समाप्ति की सिफारिश यह समिति करती है, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि पंचायतें भारत के गांवों में प्राचीन समय से चली आ रही संस्था है। इसे स्वीकार करने में पंचायतीराज की कल्पना की मूल इकाई ही समाप्त हो जायेगी। अतः पूरे भारतवर्ष में इस कारण इस रिपोर्ट की आलोचना एवं विरोध किया गया।

भारत सरकार ने ग्रामीण विकास कार्यक्रम को सक्षमतापूर्वक चलाये जाने की आवश्यकता के कारण श्री जी. वी. राव की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण किया, जिसका काम वर्तमान में ग्रामीण विकास तथा गरीबी उन्मूलन के लिए प्रशासकीय व्यवस्था का पुनर्वालोकन करना था। पंचायतीराज व्यवस्था के बारे में इसके सुझाव निम्नानुसार थे—

(1) राज्य की शक्ति को स्थानीय स्तर की लोकतांत्रिक संस्थाओं में हस्तांतरित करने की बात स्वीकार करनी होगी।

(2) जिला स्तर पर अर्थपूर्ण विकेन्द्रीयकरण होना चाहिए। सारे विकास संबंधी विभाग जिला परिषद के अधीन होने चाहिए। यह संस्था प्रत्यक्ष रूप से चुनी हुई होनी चाहिए। इसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व होना चाहिए। चुनाव समय से होना चाहिए। कार्यकाल 5 वर्ष का होना चाहिए।

(3) जिला परिषद समितियों के माध्यम से कार्य करेगी। समिति ने 11 समितियों को बनाने का सुझाव दिया है। इसमें एक सामाजिक न्याय समिति होगी जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिला तथा पिछड़े वर्गों के भलाई संबंधी कार्यों की देख-रेख करेगी।

(4) राज्य विकास परिषद इस उद्देश्य से (राज्य योजना एवं जिला योजना में समन्वय करने के लिए) स्थापित की जानी चाहिए।

(5) पंचायत समिति जो प्रत्यक्ष रूप से चुनी हुई संस्था होनी चाहिए, नियोजन एवं विकास योजनाओं को कार्यरूप में परिणित करने के लिए उत्तरदायी हो तथा जिला परिषद के निर्देशन में कार्य करे।

(6) अन्य माडल जिसके बारे में सोचा जा सकता है, मंडल पंचायत का निर्माण गांवों के समूह के लिए जिसकी जनसंख्या 15000-20000 तक हो, वर्तमान ग्राम पंचायत की जगह उस माडल में राज्य, पंचायत समिति चाहेंगे, ब्लाक स्तर पर, जो सलाह एवं समन्वयकारी कार्य करेगी।

(7) प्रत्येक गांव में ग्राम सभा होनी चाहिए, जिसकी आवश्यकता होने पर प्राय: बैठक होनी चाहिए। दो बैठकों में दो माह से अधिक का अंतर नहीं होना चाहिए।

इस रिपोर्ट ने निचले स्तर से नियोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए जिले को नियोजन की इकाई स्वीकार करते हुए, जिला परिषद को विकास के संबंध में सारे अधिकार देने का सुझाव दिया जो वास्तव में ग्रामीण विकास के दृष्टिकोण से उचित एवं महत्वपूर्ण है। समिति का यह सुझाव उपयोगी एवं प्रशंसनीय है।

राज्य एवं जिला स्तर पर नियोजन में समन्वय के दृष्टिकोण से राज्य विकास परिषद का सुझाव भी अत्यंत उपयोगी है।

भारत सरकार ने 1986 में डा. सिंघवी की अध्यक्षता में पंचायतीराज संस्था पर विचार करने के लिए एक समिति की नियुक्ति की जिसने प्रमुख रूप से सिफारिश की कि इन संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया जाये।

1988 में थुंगन समिति ने पंचायतीराज संस्थाओं की संरचना तथा उन्हें संवैधानिक दर्जा देने, उनके नियमित चुनाव कराने पर बल दिया।

निष्कर्षत: नई संस्थाओं के रूप में पंचायतीराज की विचारधारा, चिंतन एवं क्रियान्वयन 1957 की बलवंतराय मेहता समिति की सिफारिशों के बाद ही भारत में हमें देखने को मिलता है।

समय-समय पर प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर आठवीं पंचवर्षीय योजनाओं ने इसे सक्षम बनाने के लिए स्थिति एवं शक्ति की सिफारिशें कीं।

केन्द्र सरकार एवं इकाइयों की सरकारों ने इस पर चिंतन करने के लिए समय-समय पर समितियों का निर्माण किया।

किंतु दु:खद स्थिति यह है कि अभी तक पंचायतीराज की धारणा एवं चिंतन देश के लोगों के सामने अस्पष्ट है। अत: गंभीरतापूर्वक इस विषय पर चिंतन करने की आवश्यकता है।

(क्रमश:)

रीडर, राजनीति शास्त्र,
रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय,
जबलपुर, मध्य प्रदेश

(पृष्ठ 37 का शेष)

साख योजनाओं के कार्यन्वयन की सफलता विभिन्न बैंकिंग संस्थाओं, अभिकरणों, निगमों तथा जिला प्रशासन के सामूहिक प्रयासों पर निर्भर करती है। अत: कार्यान्वयन की सफलता उनके सामूहिक योगदान पर निर्भर है।

यह सत्य है कि संस्थागत स्रोत विशेषकर बैंकिंग संस्थाओं के द्वारा साख-पूर्ति में योगदान निरंतर बढ़ रहा है, लेकिन हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि अभी इस क्षेत्र में बैंकों के ऊपर महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। अभी भी सीमान्त कृषक, भूमिहीन किसान तथा कमजोर वर्ग के लोगों को पर्याप्त बैंकिंग साख के अभाव में गांव के साहूकार की शरण में जाना पड़ता है। इस अंतहीन समस्या का सामना बैंकिंग क्षेत्र को ही करना है। यह सोच कर ही बैंक संस्थाओं को अपनी व्यूह-रचना का निर्माण करना चाहिए।

व्याख्याता
आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबंध
राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राजस्थान)

महिला कानून श्रृंखला

उषा वर्मा

कानून हमारी जिन्दगी का महत्वपूर्ण हिस्सा है। हर क्षेत्र में इसकी जानकारी की हमें आवश्यकता है। व्यापार, दुर्घटना, सम्पत्ति का बटवारा, विवाह जैसे जीवन के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं की समस्याएं निपटाने के लिए हमें कानून का सहारा लेना पड़ता है। परन्तु हमारा कानून इतना पेचीदा है कि एक साधारण व्यक्ति के लिए इन्हें समझ पाना कठिन है। हर छोटी-से-छोटी कानूनी सलाह के लिये वकीलों के पास दौड़ना पड़ता है। कुछ लोग वकीलों के खर्च के डर से और कुछ लोग (कानूनी जानकारी न होने के कारण) अपने अधिकारों से हाथ धो बैठते हैं।

आर्थिक व सामाजिक असमानता, अशिक्षा तथा कानून की जानकारी न होने के कारण महिला वर्ग को विशेष रूप से कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

दहेज, तलाक, तरह-तरह के अत्याचार, परिवार में अपमान यह सब अन्याय बहुत हद तक कम अथवा समाप्त ही हो सकते हैं यदि महिलाओं को अपने कानूनी अधिकारों का ज्ञान हो। प्रायः देखा जाता है कि अपराधी चुपचाप छूट जाता है और जिस पर अत्याचार होता है वह भी नहीं जानता कि न्याय पाने के लिये अथवा अपराधी को सजा दिलाने के लिए किसका दरवाजा खटखटाए। इसके अतिरिक्त आज भी हमारा समाज व बहुत से परिवारों में यह भावना है कि लड़की या महिला के साथ कोई ऐसी घटना या अश्लील व्यवहार कोई कर भी जाए तो उसे बाहर किसी को पता नहीं लगना चाहिए। लड़की अपनी विवशता व जरूरत के कारण तथा कुछ समाज के डर से चुप रहती है और हर तरह के अन्याय व अपमान को चुपचाप सह लेती है।

यदि वह अपने मौलिक अधिकारों को कानूनी तौर से जान जाए तो उसे यह सब सहना न पड़े। वेतन के बारे में, काम-काज के विषय में, छुट्टी व और समानता के लिये वह भी मर्दों की तरह डट कर लड़ सकती है।

महिलाओं की इसी झिझक और अज्ञान को दूर करने के उद्देश्य से एक स्वयं सेवी संस्था महिला कानूनी सहायता केन्द्र ने सुश्री उषा वर्मा द्वारा लिखित 22 छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सरल भाषा तथा सुबोध शैली में लिखित ये पुस्तकें सामान्य गृहणियों और काम-काजी महिलाओं के लिए समान रूप से उपयोगी हैं। इन्हें पढ़ने से महिलाओं में निश्चय ही आत्म-विश्वास बढ़ेगा और उनके अपने अधिकारों एवं गरिमा के लिए लड़ने तथा न्याय पाने का मानसिक बल पैदा होगा। उन्हें लगने लगेगा कि अपराधियों को दंड दिलाना तथा अपने लिए मुआवजा आदि प्राप्त करना बहुत मुश्किल नहीं है। इन पुस्तकों में कानून की धाराओं के साथ-साथ पुलिस और अदालती कार्रवाई का भी ब्यौरा दिया गया है। विवाह, तलाक, गोद लेना, आत्म-हत्या, दुर्घटना, मुआवजा, मौलिक अधिकारों की रक्षा जैसे मामलों पर बने कानूनों तथा उनकी कमियों की जानकारी देते हुए लेखिका ने सामान्य महिलाओं को कानूनी समझ देने का प्रशंसनीय कार्य किया है। यह प्रयास इसलिए और भी उल्लेखनीय हो जाता है कि इन उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन एक स्वयंसेवी संस्था ने किया है। कानूनों को सरल भाषा में लिखी छोटी पुस्तकों के माध्यम से लोगों तक पहुंचाने का यह सह कार्य अन्य संस्थाओं को भी करना चाहिए ये पुस्तकें हैं :

1. मौलिक अधिकार
2. कानूनी सहायता
3. हिन्दू कानून, विवाह, तलाक उत्तराधिकार बच्चें का संरक्षण और खर्चे का अधिकार
4. संविधान में समानता, देहज और दहेज विरोधी कानून और खर्चे का अधिकार
5. गोद लेना, पारिवारिक न्यायालय और समान काम, समान वेतन

(शेष पृष्ठ 47 पर)

ग्रामीण विकास और बैंक

डॉ. ओ. पी. गुप्ता

भारत की कुल जनसंख्या का 77 प्रतिशत भाग 5 लाख 76 हजार गांवों में निवास करता है। इसी कारण गांधीजी ने 'भारत गांवों में बसता है' कहा था। इस ग्रामीण भारत का मुख्य व्यवसाय कृषि और उससे सम्बन्धित कार्य है। 1981 की जनगणना के अनुसार देश का 66.5 प्रतिशत मजदूर वर्ग कृषि पर निर्भर है।

गांवों में कुल आबादी का 25 प्रतिशत भूमिहीन मजदूर वर्ग है। 43.6 प्रतिशत गांवों की आबादी का भाग गरीबी की रेखा के नीचे अपना जीवन यापन कर रहा है। 1972-73 की मूल्य सूचकांक के अनुसार इनका उपभोग खर्च 34 रुपये था। कृषि पर निर्भर आबादी का आधा भाग ऐसा है जिसके पास मात्र एक हैक्टेयर जमीन है। बाकी के भाग का 1/5 भाग के पास 1 एवं 2 हैक्टेयर के लगभग कृषि भूमि है। इस प्रकार गांवों में निवास करने वाले इन 70 प्रतिशत लघु किसानों के पास मात्र 1 व 2 हैक्टेयर जमीन है। इनमें भी अधिकतर हरिजन आदिवासी अनुसूचित जाति तथा पिछड़े वर्ग के लगभग 80 मिलियन लोग हैं। इनमें से लगभग 40 मिलियन आदिवासी हैं। गांवों की बहुसंख्यक आबादी भी कृषि पर निर्भर है। वे भी कम उत्पादकता, बेरोजगारी प्राप्त फसल का कम मूल्य मिलना, वर्ष में अधिकतर समय का कोई उपयोग नहीं और प्राकृतिक विपत्तियों से दुखी रहते हैं।

इसी कारण वर्तमान सरकार भी ग्रामीण विकास पर अत्यधिक बल दे रही है। वैसे तो पूर्व योजनाओं में भी इस ओर काफी ध्यान दिया गया है।

इस गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले समाज के बहुसंख्यक वर्ग को सामाजिक न्याय दिलवाने तथा उनका जीवन-स्तर ऊंचा उठाने हेतु सरकार ने बहुत सारी योजनाएं बनाई हैं।

ग्रामीण विकास के लिए विशेष कृषि क्षेत्र के लिए योजनाओं के निर्माताओं ने योजनाबद्ध तरीके से इस क्षेत्र को ध्यान में रखा। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया। इसी का परिणाम है कि आज भारत खाद्य उत्पादनों में आत्मनिर्भर तथा इतने भण्डारण हैं कि प्राकृतिक विपदाओं के समय भी देश को अन्य देशों के सामने झुकने की आवश्यकता नहीं है। कृषि क्षेत्र ने गांवों के विकास में बहुत योगदान प्रदान किया है। कृषि से केवल खाद्यान्न में ही आत्मनिर्भर नहीं बने बल्कि इससे रोजगार के साधन उत्पन्न होते हैं, उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति होती है तथा देश के निर्यात में भी यह क्षेत्र अच्छी भूमिका निभाता है।

बैंकों का योगदान

ग्रामीण विकास में बैंक का महत्वपूर्ण योगदान रहा है और रहेगा। 1969 के राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों ने एक अच्छी भूमिका अदा की है। गांवों में अपनी सेवाएं प्रदान करने हेतु राष्ट्रीयकरण का कदम एक मील का पत्थर साबित हुआ। जून 1969 में देश में कुल 834 बैंकों की शाखाएं थीं। जो मार्च 1980 में इन शाखाओं की संख्या 53085 थी। सारणी 1 के अनुसार 1969 में देश में कुल बैंकों की शाखाओं की 22.3 प्रतिशत शाखाएं ग्रामीण इलाकों में थी परन्तु मार्च 1984 में यह प्रतिशत 55.8 था। 14 बैंकों के राष्ट्रीयकरण के उद्देश्यों में गांवों में शाखाएं विस्तार एवं महत्वपूर्ण उद्देश्य था। जो सारणी 1 में स्पष्ट होता है कि उसमें काफी सफलता प्राप्त की है। इसके लिए योजनाबद्ध तरीके से बैंकों की शाखाओं का विस्तार किया गया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कई योजनाएं बनाई गई।

लीड बैंक स्कीम

दिसम्बर 1969 में रिजर्व बैंक में लीड बैंक स्कीम लागू की। उसका उद्देश्य था कि विशेष क्षेत्र में सभी वाणिज्यिक बैंक एक निर्धारित बैंकों (लीड बैंक) से अपना समन्वय रखेगी तथा उसी के अनुसार शाखाओं का विस्तार करेगी और उस क्षेत्र के विकास के जो मापदण्ड निर्धारित किये गये हैं उनकी सफलता के लिए प्रयत्न करेगी। इस प्रणाली के अन्तर्गत स्टेट बैंक ऑफ इन्डिया, 14 राष्ट्रीयकृत बैंक तथा 3 प्राइवेट सेक्टर के बैंकों को देश की सभी जिलों का विकास करने के लिए दायित्व सौंपा गया। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तथा संघीय क्षेत्र दिल्ली, चण्डीगढ़, गोवा दमन व दीव को छोड़कर जिलों का निर्धारण प्रत्येक बैंक की क्षमता तथा उसको सीमाओं को ध्यान में रखकर किया गया। जिले की अग्रणी बैंक के लीडरसीप के अन्तर्गत वाणिज्यिक बैंक, सहकारी बैंक, तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं उस जिले के निकास हेतु समन्वय रखेगी। शाखाओं का

विस्तार तथा अन्य विकास की आवश्यक योजनाएं इस जिले के लिए निश्चित मापदण्डों से पूरी होगी।

लीड बैंक स्कीम का मुख्य कार्य उस डिस्ट्रिक्ट क्रेडिट पलान (डी.सी.पी.) रखा गया। इसमें निर्धारित क्षेत्र का विकास करना, बैकिंग सेवाओं का विस्तार करना, उस क्षेत्र में पिछड़े व कमजोर वर्गों का पता लगाकर उनकी सहायता करना, तथा समाज में बैंकों की उन सभी योजनाओं का लाभ पहुंचे जो अभी तक नहीं पहुंचा जैसे डेयरी फार्म, लघु सिंचाई योजनाएं, मुर्गी पालन उद्योग, कुटीर, हथकरघा उद्योग तथा लघु उद्योगों को सहायता प्रदान करना।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

1975 में रिजर्व बैंक द्वारा बनाई गई नरसिंहगम् कमेटी ने रिपोर्ट दी। ग्रामीण क्षेत्र में वहां की सहकारी बैंक तथा अन्य वाणिज्यिक बैंक उप क्षेत्र का विकास करने में असफल हैं तो क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की जाये। इनका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्गों, लघु व्यापारी, कृषि मजदूर, लघु एवम् मध्यम उद्योगों को ऋण प्रदान करना था। 1976 में 40 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कुल 489 शाखाएं थीं जो जून 1987 में इन बैंकों की संख्या 196 तथा उनकी 13076 शाखाएं थीं। उस समय ये क्षेत्रीय बैंक देश के 362 जिलों में कार्य कर रहे थे। इनके 209 लाख खातों में लगभग 1910 करोड़ रुपया जमा था। इन बैंकों ने 89 लाख खातेदारों को 1934 करोड़ ऋण के रुपये प्रदान कर रखा था। इस प्रकार इन दो योजनाओं से ही यह मालूम चलता है कि ग्रामीण क्षेत्र में वित्तीय सुविधाएं प्रदान कर इन बैंकों ने शहरी और ग्रामीण विकास में जो देश में असन्तुलन था उसे दूर करने में काफी कुछ कार्य किया है।

आई.आर.डी.पी.

पांचवीं योजना में ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए समय-समय पर कई कार्यक्रम हाथ में लिए गये। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (I.R.D.P.) के तहत प्रत्येक जिले के लिए आई.आर.डी.पी. नाम का कार्यक्रम तय किया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य था कि ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले वर्गों की सहायता करना। कृषि, पशु पालन, भूमि से सम्बन्धित अन्य उद्योग, कुटीर उद्योगों में इन व्यक्तियों को स्वयं के रोजगार के साधन उत्पन्न करना। इस कार्यक्रम के तहत उनको अनुदान दिलवाना, सम्पत्तियां खरीदने के लिए बैंकों से ऋण दिलवाना आदि। इस क्षेत्र के प्रत्येक बैंक को एक निश्चित कार्यक्रम दिये गये। प्रत्येक वर्ष गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले 600 परिवारों का पता लगाकर उनकी सहायता करना। सातवीं योजना में 20 मिलियन परिवारों की सहायता करने की संख्या निश्चित की गई। छठी योजना में इस मद के लिए 1500 करोड़ रुपये निश्चित किये गये थे जो सातवीं योजना में बढ़ाकर 3000 करोड़ कर दिया गया। बैंकों को 4000 करोड़ रुपया ऋण देने हेतु कहा गया है। छठी योजना में इस कार्यक्रम के तहत बैंक तथा सभी वित्तीय संस्थाओं में 3101.6 करोड़ रुपये उपलब्ध कराये जिसमें 72 प्रतिशत बैकों द्वारा दिया गया। सातवीं योजना फरवरी 88 तक 101 लाख परिवारों को 2335.58 करोड़ रुपये उपलब्ध कराये जा चुके हैं। जिसके 98 प्रतिशत बैंकों द्वारा दिया गया है।

सारणी–1

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा शाखा का विस्तार

	बैंक	समय	ग्रामीण	अर्द्ध ग्रामीण	शहरी	महानगर	कुल
1	स्टेट बैंक आफ	जून	462	796	163	150	1571
	इंडिया	1969	(29.4)	(50.7)	(10.4)	(9.5)	(100)
		मार्च	3584	2053	1116	676	7429
		1986	(48.2)	(27.6)	(15.1)	(9.7)	(100)
2	स्टेट बैंक आफ	जून	358	373	86	75	892
	इंडिया	1969	(40.0)	(42.0)	(9.6)	(8.4)	(100)
		मार्च	1306	1119	580	358	3363
		1986	(38.8)	(33.3)	(17.2)	(10.7)	(100)
3.	राष्ट्रीयकृत बैंक	जून	703	1465	928	1072	4168
		1969	(16.9)	(35.1)	(22.3)	(25.7)	(100)
		मार्च	10157	4436	3966	3064	21623
		1986	(47.0)	(20.5)	(18.3)	(14.2)	(100)
4.	6 राष्ट्रीयकृत	जून	-			-	
	बैंक	1969					
		मार्च	1461	734	815	523	3553
		1986	(41.7)	(20.7)	(22.9)	(14.7)	(100)
5.	क्षेत्रीय बैंक	जून		-	-		
		1969					
		मार्च	11671	553	121	1	12646
		1986	(92.3)	(6.7)	(1.0)	(-)	(100)
6.	अन्य अनुसूचित	जून	337	708	279	364	1688
	व्यावसायिक बैंक	1969	(20.0)	(41.9)	(16.5)	(21.6)	(100)
		मार्च	1434	1399	991	647	4471
		1986	(32.1)	(31.3)	(22.2)	(14.4)	(100)
	कुल	जून	1860	3344	1456	1661	8321
		1969	(22.3)	(40.2)	(17.5)	(20.0)	(100)
		मार्च	29631	10594	7589	5769	53085
		1986	(55.8)	(20.0)	(14.3)	(9.9)	(100)

बीस सूत्री कार्यक्रम

बीस सूत्री कार्यक्रम का प्रारम्भ भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी ने जुलाई 1975 में किया। 1982 में इसका पुनर्वलोकन किया गया। पुनः अगस्त 1986 में

प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने इस कार्यक्रम को रचनात्मक बनाया जो कि पूर्णरूपेण गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों और गांवों में रहने वाले समुदाय के लिये था। इसके द्वारा उत्पादकता बढ़ाना, प्रति व्यक्ति आय का स्तर ऊंचा उठाना तथा उनका आर्थिक व सामाजिक स्तर ऊंचा उठाने के लिए सरकार कृत संकल्प थी। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सितम्बर 1987 तक राष्ट्रीय कृत बैंकों ने गरीबी की रेखा के नीचे बसर करने वाले 192 लाख 20 हजार लोगों को 83.46 करोड़ रुपये की विभिन्न प्रकार से सहायता प्रदान की है। इस प्रकार बैंकों ने इस कार्यक्रम के क्रियान्वय में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। वांछित व्यक्ति बैंकों से विभिन्न योजनाओं के आधार पर बैंकों से सहायता प्राप्त कर रहे हैं। बैंकों ने इस कार्यक्रम के तहत समाज के कमजोर तबके के लोगों का अध्ययन करने हेतु स्टडी ग्रुप बनाये। इसके माध्यम से गरीब स्तर के लोगों को इस कार्यक्रम के तहत बैंकों की योजनाओं को पहुंचाना तथा वे लोग इस का फायदा उठाएं। उनका इन कार्यक्रम में विश्वास उत्पन्न हो ऐसा प्रयत्न किया गया। इसी प्रकार गांवों के प्राचीन कला व घरेलू उद्योग धंधों का उत्थान हो उनके लिए आवश्यक आर्थिक सहायता मिले इसके लिए भी बैंक ने ऐसे क्षेत्रों की जानकारी दी, तथा उनके लिए आवश्यक आर्थिक सहायता प्रदान की। अनुसूचित जनजाति तथा अनुसूचित जाति के लोगों को भी इस कार्यक्रम के तहत विशेष ऋण सहायता कार्यक्रम चलाया जिससे वे गरीबी के जीवन स्तर से अपने को ऊंचा उठा सके। इसके लिए सितम्बर 1987 तक सी.एस.बी. की सहायता कार्यक्रम के तहत राष्ट्रीयकृत बैंकों में लगभग 205 लाख लोगों को 6506 करोड़ रुपये की सहायता प्रदान की। यह ऋण सहायता देश से कुल ऋण के 11.1 प्रतिशत थी।

सारांश

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि राष्ट्रीयकरण के बाद बैंकों ने ग्रामीण विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। योजनाबद्ध तरीके से शाखाओं का विस्तार करना, क्षेत्रीय बैंकों की स्थापना, कमजोर तबके के लोगों की समस्याओं का अध्ययन करना, ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योग, प्राचीन कला की पुनः स्थापना, उनको आवश्यक वित्तीय सहायता प्रदान करना आदि समय पर बनाई गई योजनाओं से ग्रामीण लोगों को लाभ पहुंचाया है। परन्तु बैंकों की स्वयं की कुछ समस्या है जिसके कारण से जितने बैंकों में लक्ष्य निर्धारित किये वहां तक वे नहीं पहुंच पाये। शाखाओं का विस्तार किया गया परन्तु उतना स्टाफ तथा क्षेत्रानुसार वहां की समस्याओं को आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण युक्त कर्मचारियों की कमी, जरूरतमंद व्यक्तियों की सही पहचान तथा उन तक लाभ पहुंचे, फण्डस का उपयोग, राज्य सरकार के अधिकारी व बैंकों के अधिकारियों के बीच समन्वय का अभाव इसी प्रकार जिला व तहसील के अधिकारियों को लालफीताशाही, तथा बैंकों द्वारा बांटे गये ऋणों की वापसी में देरी आदि समस्याएं बैंकों के सामने आई हैं। इनका निराकरण जल्दी करना अति आवश्यक है।

सहायक प्रोफेसर
विश्वविद्यालय, लेखा एवं सांख्यिकी विभाग
महारानी कॉलेज, जयपुर

(पृष्ठ 44 का शेष)

6. महिलाओं पर अत्याचार, दहेज के लिये अत्याचार, छेड़खानी, मारपीट इत्यादि
7. अपहरण
8. हत्या और आत्महत्या
9. पुलिस और नागरिक विशेष महिलाएं
10. फौजदारी अदालतें और सरकारी वकील, जुर्म और सजा
11. ईसाई-विवाह और तलाक, बच्चों का संरक्षण, खर्चा और उत्तराधिकार कानून
12. इस्लामी कानून, विवाह तलाक, बच्चों का संरक्षण और खर्चे का अधिकार
13. मोटर वाहन दुर्घटना पर मुआवजा
14. पारसी विवाह कानून
15. भारतीय उत्तराधिकार कानून
16. वसीयत का कानून
17. मजदूरों के कानून और महिलाएं
18. मजदूरों के कानून और महिलाएं (कारखाना कानून)
19. अदालतें और वकील।

समीक्षा : चन्द्रकांता वर्मा

छतरपुर जिले में भूमि विकास बैंक की उपलब्धियां

शोभा मिश्रा

बुन्देलों की पावन नगरी छतरपुर, बुन्देल केसरी महाराज छत्रसाल की छत्रछाया में पुष्पित एवं पल्वित भू-गर्भ सम्पदा से समृद्ध बुन्देलखण्ड क्षेत्र का केन्द्र बिन्दु रही है। यहां के ग्रामवासियों के अर्थोपार्जन का मुख्य साधन कृषि है। जब कृषक अपने कृषि व्यवसाय से अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं, तब उन्हें कर्ज का सहारा लेना पड़ता है। एक लम्बे समय से साहूकार और महाजन इस कार्य को करते आ रहे हैं। इससे कृषक की समस्याओं का समाधान कम होता था और शोषण अधिक। गरीब किसान को सरलतापूर्वक ऋण उपलब्ध हो सके, इस उद्देश्य से शासन द्वारा अनेक वित्तीय संस्थाओं की सुविधायें प्रदान की गईं। अनेक वित्तीय संस्थाओं में भूमि विकास बैंक एक महत्वपूर्ण इकाई है।

छतरपुर जिले में 25 फरवरी 1962 को 'भूमि बन्धक अधिशोष' नामक संस्था की स्थापना की गई। इस संस्था का पंजीकरण क्रमांक सी.एच.टी.पी.आर./40/78 था। कुछ समय बाद इस संस्था का नाम 'भूमि बन्धक अधिशोष' से हटाकर 'भूमि विकास अधिशोष, रखा गया। यह सम्पूर्ण कार्यवाही पंजीयक महोदय के निर्देशानुसार हुई। इस बैंक के नियमानुसार अपना कार्य संचालन वर्ष 1962-63 में प्रारम्भ किया। इसका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण छतरपुर जिला है। इसका प्रमुख कार्यालय जिला केन्द्र में स्थित है। यह बैंक 8 विकास खण्डों एवं 6 तहसीलों में प्रभावशाली ढंग से कार्य कर रहा है। जो क्रमशः छतरपुर, नौगांव, राजनगर, बड़ामलहरा, लौंडी एवं ईशानगर में है।

तहसीलों में इन शाखाओं की स्थापना निम्न तालिका से स्पष्ट है।

भूमि विकास बैंक का कार्यक्षेत्र

तहसील	शाखा	विकास खण्ड	आरम्भिक तिथि
1. लौंडी	लौंडी	लौंडी	4.2.1968
2. बिजावर	बिजावर	बिजावर	12.10.1973 व 5.3.1970
3. नौगांव	नौगांव	नौगांव	1.1.1972
4. राजनगर	राजनगर	राजनगर	10.10.1972
5. छतरपुर	ईशानगर	ईशानगर	1.1.1973

उपरोक्त शाखाओं के अतिरिक्त इस बैंक के चार प्रमुख पर्यवेक्षक केन्द्र भी हैं। जो क्रमशः बरीगढ़, बकवाहा, गुलगंज एवं ईशानगर में हैं।

किसानों को तीन प्रकार के ऋणों की आवश्यकता होती है। ये हैं—अल्पकालीन, मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन। अल्पकालीन साख कृषि संबंधी सभी कार्यों जैसे—बीज, खाद तथा श्रमिकों को भुगतान करने के लिये दिया जाता है। साधारणतः इस साख की अवधि एक वर्ष की होती है। मध्यकालीन ऋण एक से पांच वर्ष की अवधि के लिये दिये जाते हैं। इस साख का उपयोग भूमि क्रय, मकान बनाने, भूमि सुधार करने, पशु सम्पत्ति प्राप्त करने एवं कृषि यंत्र व उपकरण क्रय करने के लिये दिये जाते हैं।

छतरपुर जिले के कृषकों को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराने में भूमि विकास बैंक की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह अधिकोष इस क्षेत्र के अधिकाधिक परिवारों को ऋण सुविधा उपलब्ध करा रहा है। बैंक अपने शीर्षस्थ अधिकोष मध्य प्रदेश ऐपेक्स बैंक भोपाल के अधीनस्थ कार्य करता है और भू-स्वामियों को सीधे ऋण उपलब्ध कराता है। इस प्रकार इसका कार्य साहूकारी ढंग का है। फिर भी यह अन्य सहकारी संस्थाओं से अपनी वितरण प्रणाली को लचीला एवं सुगम

बनाये हुये है। यह कार्य पद्धति लोगों को सहजता से समझ में आ जाती है।

ऋण उपलब्ध कराने के संबंध में छतरपुर जिले में जो प्रक्रिया अपनाई जाती है उसके लिये कृषक को बैंक का सदस्य होना आवश्यक है। कृषक को भूमि विकास बैंक में आवश्यक भूमि संबंधी कागजात का स्वामित्व एवं स्थायित्व लिखकर प्रस्तुत करना आवश्यक होता है। इसके बाद बैंक अधिकारी ऋण आवेदन पत्र कृषक को देता है। आवेदन पत्र के जमा करते समय निर्धारित शुल्क का भुगतान करना आवश्यक है। आवेदन पत्र को शासकीय मूल्यांकन (जो कि बैंक का होता है) के लिये भेजा जाता है। इस मूल्यांकन से कागज पत्रों एवं स्वामित्व संबंधी जांच के बाद आवेदक की ऋण अदायगी क्षमता निर्धारित की जाती है। तदुपरान्त वैधानिक सलाहकार से संबंधित आवेदन पत्र पर स्वामित्व एवं ऋण सीमा निर्धारित करने हेतु सहमति की अनुशंसा की जाती है। ऐसे आवेदन पत्रों को प्राथमिक विकास बैंक के सहायक मण्डल के अनुमोदित करने के पश्चात प्रदेश के ऐपैक्स बैंक को भेज दिये जाते हैं। ऐपैक्स बैंक के उपाध्यक्ष ऐसे प्रकारणों की जांच करके ऋण स्वीकृत करते हैं एवं पुनः जिला भूमि विकास बैंक को लौटा देते हैं।

जिला भूमि विकास बैंक अपने कृषक ऋण प्राप्त कर्त्ताओं को निम्न उद्देश्यों के लिये ऋण साख सुविधा प्रदान करता है। (1) कुओं की मरम्मत एवं नवनिर्माण, (2) सिंचाई योग्य भूमि तैयार करने हेतु, (3) भूमि सुधार एवं नवनिर्माण हेतु, (4) कृषि भवन निर्माण हेतु, (5) भूमि सुधार एवं नवनिर्माण, (6) पशु एवं मशीनों के शेड का निर्माण करने हेतु, (7) विद्युत पम्प के लिये, (8) पेट्रोल युक्त पम्पों के क्रय के लिये, (9) ट्रैक्टर-ट्रॉली सहित कृषि यंत्रों के क्रय हेतु, (10) बैल गाड़ी एवं बैल जोड़ी के क्रय हेतु, (11) थ्रेसर मशीन के क्रय हेतु, (12) उद्यान आम, नीबू एवं कटहल के उत्पादन के लिये, (13) कुंदरू उत्पादन के लिये, (14) रिप्रकलर के लिये, (15) बोनकी बांस, बबूल एवं यूकेलिप्टस के उत्पादन के लिये, (16) पवन चक्की के निर्माण के लिये, (17) नलकूप के लिये, (18) गोबर गैस संयंत्र के लिये, (19) मुर्गी पालन एवं मत्स्य पालन के लिये, (20) तालाब निर्माण के लिये, (21) गुलाब की खेती के लिये, (22) पान बरेजे के लिये, (23) भूमि की चकबन्दी के लिये, (24) पुराने ऋणों की अदायगी के लिये।

इन उद्देश्यों के लिये दिये जाने वाले ऋणों की अवधि 5 से 20 वर्षों तक की होती है। छतरपुर भूमि विकास बैंक मर्यादित छतरपुर के पिछले पांच वर्षों के उद्देश्यवार ऋण वितरण कार्यक्रम के आंकड़ों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि बैंक निरन्तर प्रगति कर रहा है।

उद्देश्यवार ऋण वितरण कार्यक्रम
(वर्ष 1983-84 से 1987-88 तक)

क्र.		1983-84		1984-85		1985-86		1986-87		1987-88	
सं.	उद्देश्य	संख्या	राशि	संख्या	राशि	संख्या	राशि	संख्या	राशि	संख्या	राशि
1.	कूप निर्माण	359	21.45	337	20.38	311	21.56	228	16.02	305	21.25
2.	कूप सुधारने	67	1.66	78	1.86	32	1.26	7	.32	9	.20
3.	डीज़ल पम्प	77	4.93	107	7.01	77	5.23	72	5.33	92	6.59
4.	विद्युत पम्प	64	2.98	128	6.57	137	7.35	168	.31	168	12.19
5.	रहट	88	1.74	60	1.19	66	1.30	18	.37	2	.04
6.	ट्रैक्टर	15	11.96	17	13.69	15	12.28	31	28.86	7	5.99
7.	थ्रेसर	3	.26	8	.53	13	.88	26	1.76	56	5.04
8.	बैलगाड़ी	—	—	1	.02	3	.08	2	.04	6	.19
9.	बैल जोड़ी	1	.30	1	.03	3	.07	2	.04	8	.17
10.	पशु पालन	—	—	3	.01	4	.15	30	1.41	26	1.61
11.	[illegible]	-	—	1	.02	1	.04	1	.04	2	.10
12.	फलोद्यान	—	-	--	—	1	.02	6	.25	19	1.85
13	गोबर गैस	—	—	—	—	--	—	1	.05	2	.10
14.	बोरिंग स्थापित्व	—	—	--	—	—	—	1	.02	—	—
15.	पान बरेजे	—	—	—	—	—	—	1	.03	28	2.98
16.	मुर्गी पालन	-	-	-	—	—	—	—	—	1	37
	योग	674	44.98	741	51.42	633	50.68	598	57.27	761	69.73

तालिका में दर्शाये गये ऋण वितरण कार्यक्रम से स्पष्ट है कि बैंक ने प्रगति की है।

भूमि विकास बैंक की ऋण प्रदान करने की नीति के संबंध में केन्द्रीय बैंक जांच समिति ने ग्रामीण वित्त के अध्ययन के बाद यह सुझाव दिया था कि भूमि विकास बैंक को पुराने ऋणों को चुकाने तथा भूमि सुधार के लिये ऋण उपलब्ध कराने चाहिये। ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने यह भी सुझाव दिया था कि भूमि विकास बैंक को उत्पादन वृद्धि, सिंचाई के साधनों में सुधार, कृषि औजारों के क्रय तथा अन्य उत्पादक कार्यों की पूर्ति के लिये ऋण उपलब्ध कराने चाहिये। चाहे वे कृषक कार्य हेतु हों अथवा अन्य संबंध में। किन्तु बैंकों का विशेष प्रयास यह होता है कि स्वीकृत ऋण उत्पादक हों।

समय-समय पर जोर दिया गया कि भूमि विकास बैंक को ऋण नीति में उत्पादकता वृद्धि को दृष्टिगत रखते हुये सुधार करना चाहिये। जिससे पुराने ऋणों की अदायगी की अपेक्षा उत्पादन वृद्धि को महत्व दिया जा सके।

छतरपुर भूमि विकास बैंक मर्यादित छतरपुर के पिछले पांच वर्षों के ऋण वितरण लक्ष्य को देखने से यह स्पष्ट होता है कि बैंक ने अपने ऋण वितरण कार्यक्रम के निर्धारित लक्ष्य से कहीं अधिक कार्य किया है।

ऋण वितरण लक्ष्य एवं पूर्ति को तालिका से स्पष्ट किया गया है।

ऋण वितरण का लक्ष्य एवं पूर्ति

वर्ष	सामान्य		योजना		योग	
	लक्ष्य	पूर्ति	लक्ष्य	पूर्ति	लक्ष्य	पूर्ति
1983-84	22.82	12.19	36.10	32.79	58.92	44.98
1984-85	18.70	14.41	38.00	31.11	56.70	51.42
1985-86	9.14	2.74	34.00	47.94	43.14	50.68
1986-87	2.62	3.13	42.00	47.96	44.62	57.27
1987-88	20.23	22.25	44.62	41.80	64.85	64.05

ऋण वितरण एवं लक्ष्य पूर्ति की तालिका से स्पष्ट है कि बैंक ने ऋण वितरण के लिये अपना जो लक्ष्य निर्धारित किया था, उसमें वर्ष 1983-84 व 1984-85 में सफलता प्राप्त नहीं हुई। किन्तु 1985-86 से बैंक ने निर्धारित लक्ष्य से अधिक कार्य किया अर्थात भूमि विकास बैंक छतरपुर की पंजीयन दिनांक पर अंश पूंजी 10255 रुपये थी और वर्ष 1962-63 को 13372 रुपये थी। वर्तमान में अंश पूंजी 44.28 लाख रुपये हो गई है। जो यह दर्शाती है कि बैंक दिन-प्रतिदिन प्रगति कर रहा है। इसे निम्न तालिका से स्पष्ट किया गया है।

भूमि विकास बैंक की अंश पूंजी का विवरण

वर्ष	अंश पूंजी
25 फरवरी 1962	10255.00
1962-63	13378.00
1983-84	1019200.00
1984-85	1801861.25
1985-86	2278710.25
1986-87	3900000.99
1987-88	4400000.00

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि स्थापना तिथि से वर्ष 1983-84 तक अंश पूंजी में वृद्धि हुई है। किन्तु वर्ष 1984-85 में अंश पूंजी की बहुत कमी आई थी। परन्तु 1986-88 में पुन: वृद्धि हुई।

ऋण की वसूली, बैंक का आधार तत्व होती है। यदि जिला बैंक की वसूली 75 प्रतिशत से अधिक होती है, तब जिला बैंक को आगामी वर्ष हेतु असीमित ऋण वितरण कार्यक्रम प्राप्त होता है और ऐसी स्थिति में बैंक प्रगति की ओर अग्रसर होता है। इसके विपरीत स्थिति होने पर भावी गति अवरुद्ध हो जाती है।

छतरपुर भूमि विकास बैंक की पिछले पांच वर्षों की वसूली से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बैंक की प्रगति संतोषप्रद है और उसे असीमित ऋण वितरण कार्यक्रम प्राप्त होते रहे हैं।

बैंक की ऋण वसूली की प्रगति

वर्ष	मांग	वसूली	कालातीत	वसूली प्रतिशत
1983-84	76.75	34.93	41.85	45.5
1984-85	72.22	39.61	39.65	46.4
1985-86	67.22	40.09	27.13	60.0
1986-87	64.49	38.62	25.87	60.0
1987-88	85.46	62.21	23.25	74.0

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि बैंक ने प्रगति की है।

ऋण वसूली के समय बैंक को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जो निम्नानुसार हैं– (1) जिला बैंक द्वारा सम्यावधि के प्रकरण तैयार नहीं किये जाते हैं। (2) विक्रय अधिकारियों द्वारा क्रमानुसार प्रत्येक प्रकरण पर सम्यावधि में वैधानिक कार्यवाही सम्पन्न नहीं की जाती है। (3) बोली लगाने वाले उपलब्ध नहीं होते हैं। (4) विक्रय की पुष्टि सही समय पर नहीं हो पाती है। (5) क्रेता को उसके द्वारा क्रय की गई भूमि का स्वामित्व दिलाने का प्रावधान भूमि विकास बैंक अधिनियम 1966 में नहीं है। (6) जिला बैंक स्तर पर पृथक से वसूली कक्ष की स्थापना नहीं होती है। (7) जिला स्तर पर कार्यरत कर्मचारियों का स्तर बहुत निम्न होता है। (8) बैंक में कर्मचारियों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था नहीं होती है। (9) उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त कर्मचारी पदस्थ नहीं होते हैं। (10) उपयुक्त पर्यवेषण का न होना। (11) संस्था का वार्षिक एवं उचित कार्यक्रम नहीं होता है। (12) कार्यक्रम के अनुसार कार्य का अवलोकन नहीं किया जाता है। (13) कार्यक्रम के अनुसार कार्य पूर्ण करने के लिये कर्मचारियों द्वारा दायित्वों की पूर्ति नहीं की जाती है। (14) ऋण वितरण हेतु क्षेत्र विशेष के लिये योजना नहीं बनाई जाती है।

उपरोक्त अनेक समस्याओं के बाद भी जिला भूमि विकास बैंक मर्यादित छतरपुर अपनी पूरी सामर्थ के साथ प्रगति पथ पर आगे बढ़ रहा है।

इस बैंक के प्रबन्धक श्री एम. डी. पांचाल लगभग 70 व्यक्तियों के सहयोग से बैंक का संचालन एवं निर्देशन कर बैंक को अधिक-से-अधिक सफल एवं उच्च स्तर का बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

द्वारा, हरीश पाठक
उप सम्पादक, धर्मयुग
टाइम्स ऑफ इण्डिया
डा. डी. एन. रोड, बम्बई-1

ग्राम बटोधा में विकास की झलक

यू. सी. मारकवाड़े

ग्राम बटोधा मंडला जिले के डिन्डौरी तहसील में डिन्डौरी-शहडोल मार्ग 35 किलोमीटर दूरी पर विराट जंगलों के वीराने में बसा है। 10-15 वर्ष पूर्व इस ग्राम में 2-4 घर अलग-अलग एवं दूरी के अंतराल में दिखाई देते थे जिसकी जनसंख्या 500 थी। उस समय यह गांव नाजुक स्थितियों एवं कठिनाइयों के दौर में था। आज यह गांव एक प्रगति के प्रतीक का रूप ले चुका है। इस आदिवासी गांव में 95 प्रतिशत आदिवासी (बैगा जाति के लोग) निवास करते हैं। इन ग्रामीणों में विकास की आशा की नई किरण झलकनें लगी है। वर्तमान में इस गांव की जनसंख्या लगभग 1500 है। ग्राम बटोधा में बेरोजगारों को रोजगार, जानवर एवं मवेशियों के लिये तालाब पीने के पानी की सुविधाएं गरीबी के रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले निवासियों के घरों में बिजली की मुफ्त रोशनी तथा शिक्षा का पूरा विकास हो रहा है।

ग्राम बटोधा के श्री रामस्वरूप सोनवानी ग्राम विकास निर्माण समिति के अध्यक्ष हैं तथा समाज सेवी भी हैं। श्री सोनवानी ने क्षेत्रीय प्रचार सहायक को बताया है कि इस ग्राम में अब विकास की नई किरण दिखाई देने लगी है। अगस्त 89 में इस गांव के विकास हेतु जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत एक लाख चार हजार रुपये मिले थे। इस आवंटन से ग्राम बटोधा में चार तालाब का निर्माण किया गया जिससे जानवर एवं मवेशियों के लिए पीने के पानी का अभाव दूर हुआ है।

सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत 7 एकड़ प्लाट में 2000 पौधे लगाये गये, जिसकी रक्षा स्वयं ग्रामवासी कर रहे हैं। बटोधा से बघर्रा ग्राम तक 5 कि. मी. रोड का निर्माण किया गया है जो कि ग्रामीणों के रोजमर्रा का समान क्रय करने, आने-जाने हेतु सुविधा तथा बेरोजगारों को रोजगार मिला जिसमें 11 रुपये नगद एवं डेढ़ किलो गेहूं प्रति दिन मजदूरी के रूप में दिया गया। 90 प्रतिशत आदिवासियों को एक प्वाईन्ट बिजली कनेक्शन देकर अंधेरी झोपड़ी में प्रकाश बिखेर दिया है।

ग्राम बटोधा में शिक्षा का पूर्ण रूप से अभाव था। पूर्व में इस गांव के बच्चे 35 कि. मी. दूरी पर डिन्डौरी एवं बोंदर में पढ़ने जाया करते थे। किसी प्रकार से प्राइमरी पाठशाला का निर्माण हुआ जिसमें आदिवासी अपने बच्चों को पढ़ाने में हिचकिचाया करते थे। आज इस गांव में प्राइमरी स्कूल के साथ मिडिल स्कूल भी खुल गया है एवं गांव के लगभग सभी परिवार के बच्चे मुफ्त शिक्षा का लाभ ले रहे हैं तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय का निर्माण करने हेतु प्रयासरत हैं।

यहां कभी आदिवासी खेती उत्पादन में भूख सन्तुष्टी हेतु कोदो एवं कुटकी का उत्पादन करते थे। वर्तमान में शासन की योजना के अन्तर्गत एवं मंडला बालाघाट क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की सहायता से 50 प्रतिशत आदिवासियों को बैल-जोड़ी एवं खेतों में कुओं के निर्माण हेतु 5000 रुपये का कर्ज प्रदान किया गया जिससे ग्रामीण आदिवासी गेहूं, चना एवं अन्य फसल ले रहे हैं। बेरोजगारी को दूर करने हेतु श्री रामचरण सोनी को मनिहारी दुकान, श्री दुखी सिंह पट्टा को किराना, श्री सत्ता सिंह गोंड़ को किराना, श्री भगवत प्रसाद चंदेल को कपड़ा दुकान, श्री रामनिधि पाण्डे को होटल आदि के लिये स्वरोजगार हेतु कर्ज लेकर खुद के व्यवसायों से सुखी जीवन यापन कर रहे हैं।

श्री दुखी पट्टा अपनी भाषा में बताते हैं "साहेब हमरे गांव मा चाय की होटल औउर कोई दुकान भी नहीं रहीं है। अबके तो हमारा गांव शहर जैसन लगत है, सरकार के अनाज के दुकान, मट्टी के तेल के दुकान, औउर चार चाय पानी के होटल, औउर किराना दुकान भी खुले हैं। हमरे गांव मा सब समान मिलत है। सरकार के मोटर (बस) भी चलत है।" ग्राम बटोधा के निवासी कहते हैं, "जीवन में आसा निरासा का चक्र स्वाभाविक है। परन्तु इन्सान आशा में जीवन जीता है एवं विकास करता है। स्वच्छ प्रशासन, अधिकारी, कर्मचारियों का ग्रामीणों के साथ अच्छा व्यवहार तथा ग्रामीण एक जुट होकर विकास हेतु संघर्षरत रहें तो बटोधा ग्राम जैसे ग्रामीण विकास की झलक भारत के अन्य गांवों के दिखाई देगी तथा हमारा ग्रामीण भारत देश विश्व में उन्नति एवं प्रगति की चोटी पर होगा। ☐

जन्म या मृत्यु

जब आपके परिवार में हो तो अपने स्थानीय रजिस्ट्रार के यहां रजिस्टर कराएं

क्योंकि

जन्म प्रमाण-पत्र
उम्र का सबूत है :

* स्कूल में प्रवेश के लिए
* रोजगार के लिए
* मताधिकार प्राप्त करने के लिए
* ड्राईविंग लाइसेंस प्राप्त करने के लिए
* पासपोर्ट प्राप्त करने के लिए
* बीमा पालिसी प्राप्त करने के लिए

मृत्यु प्रमाण-पत्र
आवश्यक है :

* सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिये
* बीमा राशि वसूल करने के लिए
* सम्पत्ति के दावे निपटाने के लिए

समय पर रजिस्टर कराएं और प्रमाण-पत्र निःशुल्क प्राप्त करें

जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण कानूनन जरूरी है ।
विलम्ब रजिस्ट्रीकरण की भी अनुमति है ।

महारजिस्ट्रार, भारत

davp 90/146

ग्राम की चौखट पर प्रशासन की दस्तक

घनश्याम वर्मा

ग्रामवासियों की विभिन्न प्रकार की समस्याओं का मौके पर निपटारा कर लोगों को राहत प्रदान करने की दृष्टि से कोटा जिले में आयोजित 'प्रशासन गांव की ओर' अभियान सम्पन्न हुआ। आरंभ में इस अभियान के तहत जिले की सभी बारह तहसीलों की समस्त ग्राम पंचायतों पर कुल 304 राजस्व शिविर आयोजित किए गए। इन शिविरों के माध्यम से भूमि आबंटन, नामांतरण तथा राजस्व संबंधी अन्य मामलों के साथ-साथ दूसरे प्रकार के प्रकरणों का भी निस्तारण कर उल्लेखनीय कार्य किया गया है।

राजस्थान के सभी जिलों की भांति कोटा जिले में भी आयोजित इस अभियान में 8 हजार 950 व्यक्तियों को खातेदारी अधिकार दिए गए। नामांतरण के 27 हजार 17 मामले निपटाए गए। उपनिवेशन क्षेत्र में 3 हजार 317 व्यक्तियों को 5 हजार 220 एकड़ भूमि का आबंटन किया गया जिनमें 1184 व्यक्ति अनुसूचित जाति के तथा 661 व्यक्ति अनुसूचित जनजाति के लाभान्वित हुए। अभियान में 4 हजार 897 व्यक्तियों को 7 हजार 996 एकड़ राजकीय सिवाय चक भूमि का तथा 252 व्यक्तियों को 766 एकड़ सीलिंग भूमि का आबंटन भी किया गया। अनुसूचित जाति के 1296 एवं जनजाति के 1330 व्यक्तियों को सिवाय चक तथा अनुसूचित जाति के 111 एवं जनजाति के 46 व्यक्तियों को सीलिंग भूमि आबंटित कर लाभान्वित किया गया।

राजस्व अभियान के दौरान उद्योग विभाग के माध्यम से लघु एवं कुटीर उद्यमियों के ऋण आवेदन पत्र भी तैयार किए गए। लघु उद्यमियों की 214 इकाइयों का पंजीकरण किया गया तथा 34 इकाइयों को 2 लाख 44 हजार 260 रुपये की ऋण राशि स्वीकृत की गई। ग्रामीण दस्तकारों को सहायता दिलाने के संबंध में 82 इकाइयों का तथा खादी एवं ग्रामोद्योग विभाग के क्षेत्र में 109 इकाइयों का पंजीकरण किया गया जिनमें से 31 इकाइयों को एक लाख 18 हजार 700 रुपये का ऋण स्वीकृत किया गया।

समन्वित ग्रामीण विकास योजना में चयनित 6770 लाभान्वित परिवारों की सम्पत्तियों का भौतिक सत्यापन किया गया तथा 2816 नए आवेदन पत्र तैयार कराए गए। विभिन्न विभागों से संबंधित 2063 अभाव अभियोग के प्रकरणों का निस्तारण किया गया। स्वरोजगार योजना के तहत 126 व्यक्तियों के ऋण आवेदन पत्र तैयार कराए गए। खादी एवं ग्रामोद्योग के क्षेत्र में 77 व्यक्तियों को आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने के संबंध में आवेदन पत्र प्राप्त हुए जिनमें से 16 व्यक्तियों को 32 हजार 200 रुपये की सहायता उपलब्ध कराई गई। सामूहिक बीमा योजना के तहत 175 व्यक्तियों के तथा दुर्घटना बीमा योजना के तहत 8 व्यक्तियों के आवेदन पत्र भरवाए गए।

राजस्व अभियान के तहत उल्लेखनीय उपलब्धियां अर्जित किए जाने में जनप्रतिनिधियों, प्रशासनिक एवं राजस्व अधिकारियों, विकास अधिकारियों तथा अन्य विभागों से सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। प्रत्येक तहसील में राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारी, अभियान के प्रभारी अधिकारी नियुक्त किए गए थे जिन्होंने अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पादित किया। अतिरिक्त जिला कलेक्टर (विकास), अति. जिला कलेक्टर (शहर) तथा मुख्य अधिशासी अधिकारी को नियुक्त किया गया था। प्रत्येक अधिकारी को तीन तहसीलों का प्रभारी बनाया गया। अभियान के दौरान संभागायुक्त ने तथा जिलाधीश ने शिविरों का अवलोकन कर कई मामलों का मौके पर निस्तारण कराया।

राजस्व शिविरों में जो समस्याएं सामने आई हैं उनमें से शेष रही समस्याओं के निरस्तारण हेतु फालोअप दलों का गठन किया जा चुका है। ये दल अब गांवों में जाकर लोगों की उन समस्याओं का निराकरण करेंगे जो शिविरों में प्रस्तुत हुई थी। विशेष रूप से जमीनों का कब्जा दिलाने तथा अतिक्रमण हटाने के बकाया मामलों को निपटाया जाएगा। शिविरों में प्राप्त हुए प्रार्थना पत्रों में से उचित कार्यवाही होने से शेष रहे मामलों को निपटाने हेतु भी संबंधित अधिकारियों को निर्देश दे दिए हैं।

के. आर. 239,
सिविल लाइन्स कोटा, राजस्थान 324001

सहरिया आदिवासियों को मुख्यधारा से जोड़ने के प्रयास

प्रभात कुमार सिंघल

आदिवासी सहरिया राजस्थान की एकमात्र घोषित आदिम जनजाति है। सहरिया जनजाति के लोग राजस्थान में कोटा जिले की शाहबाद एवं किशनगंज तहसील में निवास करते हैं। घास-फूस की झोपड़ियों में रहने वाले सहरियों के कल्याण एवं उन्हें समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के प्रयास यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आरंभ हो गये तथापि समयबद्ध कार्यक्रम तैयार कर व्यवस्थित रूप से प्रयास सन् 1977-78 में पहली बार शुरू किये गये। उस वर्ष इनके आर्थिक उत्थान के दृष्टिकोण को मद्देनजर रखते हुए सहरिया विकास परियोजना प्रारंभ की गई। यह परियोजना विशेष केन्द्रीय सहायता योजना से प्रारंभ की गई।

परियोजना का क्षेत्र

परियोजना के क्षेत्रफल की दृष्टि से वही क्षेत्र परियोजना के अंतर्गत लाया गया जहां सहरिया जनजाति के लोग निवास करते हैं। तहसील किशनगंज एवं शाहबाद के 435 ग्राम परियोजना में सम्मिलित हैं। वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार परियोजना क्षेत्र की कुल जनसंख्या 1.46 लाख है जिसमें सहरिया की जनसंख्या 0.34 लाख है। यह परियोजना क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 23.32 प्रतिशत है।

परियोजना क्षेत्रफल का विवरण

पंचायत समिति	क्षेत्रफल	कुल ग्राम संख्या	जनसंख्या वर्ष 1981 जनगणना के अनुसार		सहरिया जनसंख्या प्रतिशत
			कुल जनसंख्या	सहरिया जनसंख्या	
1. शाहबाद	1469	236	63,323	19,185	30.30 प्रतिशत
2. किशनगंज	1429	199	82,410	14,793	17.95 प्रतिशत
योग	2898	435	1,45,733	33,978	23.32 प्रतिशत

स्रोत : सहरिया विकास परियोजना कार्यालय, शाहबाद

वित्तीय प्रावधान

योजना निर्माण, क्रियान्वयन, दिशा निर्देश एवं समय-समय पर विकास कार्यक्रमों की प्रगति समीक्षा करने के लिए दिसम्बर 1977 में सहरिया विकास समिति का गठन किया गया समिति में क्षेत्र के विधान सभा सदस्य, लोकसभा सदस्य एवं अन्य संबंधित जिलाधिकारी इस समिति के सदस्य हैं।

सहरिया विकास कार्यक्रम के अंतर्गत वर्ष 1977-78 से मार्च 1990 तक कुल 2 करोड़ 76 हजार रुपये की धनराशि का आबंटन किया गया। इसमें से विशेष केन्द्रीय सहायता के रूप में 2 करोड़ 16 लाख 61 हजार रुपये आबंटित किये गये। इसके अतिरिक्त राज्य मद से 25 लाख 58 हजार तथा जनजातीय उपयोजना से 35 लाख 27 हजार रुपये का आबंटन किया गया।

सहकारिता विकास कार्यक्रम के अंतर्गत कुल स्वीकृत राशि के विपरीत फरवरी 1990 के अन्त तक 2 करोड़ 59 लाख 814 रुपये की धनराशि सहरिया कल्याण कार्यक्रमों पर व्यय की गई।

सहरिया विकास परियोजना के अंतर्गत सहरियों को आर्थिक दृष्टि से बेहतर बनाने के लिए कृषि, पशुपालन, सिंचाई, वानिकी, शिक्षा, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, पेयजल, सहकारिता, आवासीय सुविधा, मुफ्त कानूनी सहायता, विद्युतीकरण, सड़क पर पुलियाओं का निर्माण, वृद्धावस्था पेंशन, प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं बचत समूह योजना के कार्यक्रम क्रियान्वित किये गये।

कृषि एवं पशुपालन

छोटी-छोटी जोत वाले सहरियों को कृषि एवं पशुपालन पर आजीविका के बेहतर साधन सुलभ कराने की दृष्टि से प्रयास किये गये। अब तक की परियोजना अवधि में इस मद में कुल 13 लाख 50 रुपये व्यय किये गये। कृषि के अंतर्गत बैलगाड़ी व बैलजोड़ी 560, कृषि प्रदर्शन से 1070, फल विकास से 85, खाद बीज वितरण से 1260 सहरिया परिवारों को लाभान्वित किया गया। पशुपालन के अंतर्गत 32 परिवारों को बकरी पालन, 26 परिवारों को दुधारू पशु तथा 40 परिवारों को मुर्गी पालन हेतु पशु एवं मुर्गी इकाइयां उपलब्ध कराई गई।

सिंचाई सुविधाओं का विकास

सिंचाई सुविधाओं के विकास हेतु 70 लाख 753 रुपये व्यय किये गये। योजना के अंतर्गत 186 नये कृषि कुओं के निर्माण

कराये गये। कृषि कुओं को ब्लास्टिंग द्वारा गहरा कराने का काम 414 कुओं पर किया गया। पम्प सेटों का वितरण 32 काश्तकारों को किया गया तथा 17 एनीकटों का निर्माण कराया गया। इसके अतिरिक्त 53 सामुदायिक डीजल पम्प सेट वितरित किये गये तथा 4 जलोत्थान सिंचाई योजनाएं पूरी की गई तथा 20 रहट वितरण किये गये।

शैक्षिक विकास

सहरिया समाज में व्याप्त निरक्षरता को दूर करने की दृष्टि से सर्वाधिक 84 लाख रुपये की धनराशि व्यय की गई। सहरिया बालकों को शिक्षा के प्रति प्रेरित करने के दृष्टिकोण से छात्रवृतियां, निःशुल्क पोशाक, पुस्तकें एवं उपस्थिति प्रोत्साहन आदि कार्यक्रम चलाये गये। दूरस्थ अंचलों में निवास करने वाले सहरिया बालकों को अध्ययन के लिए छात्रावास सुविधा भी उपलब्ध कराई गई। प्राथमिक शिक्षा के 9033 तथा उच्च प्राथमिक स्तर के 150 विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति का लाभ उपलब्ध कराया गया। उपस्थिति प्रोत्साहन राशि 570 विद्यार्थियों को उपलब्ध कराई गई। निशुल्क पोशाकें, पुस्तकें एवं स्टेशनरी आदि का वितरण 10 हजार से अधिक विद्यार्थियों में किया गया। 21 प्राथमिक शाला भवनों का निर्माण किया गया। प्रौढ़ शिक्षा के 20 तथा अनौपचारिक शिक्षा के 10 केन्द्र संचालित किये जा रहे हैं।

वानिकी कार्यों पर लाभ

परियोजना के अंतर्गत वन विकास कार्यों पर अब तक 2 लाख 532 रुपये व्यय किये जा चुके हैं। इस कार्यन्र्म के अंतर्गत 23 हजार से अधिक पौधों का वितरण किया गया। भैंसा घाट वन क्षेत्र में 240 सहरिया परिवारों ने वृक्षारोपण किया।

चिकित्सा एवं स्वास्थ्य

सहरिया समाज को स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने के साथ उनको परिवार नियोजन जैसे राष्ट्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत लाने के प्रयासों पर 14 लाख 260 रुपये व्यय किये गये। अब तक 5 हजार 510 सहरियों को निशुल्क दवाईयों का वितरण किया गया। चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने की दृष्टि से 12 चिकित्सा शिविरों का आयोजन किया गया। परिवार कल्याण कार्यक्रम के अंतर्गत 1340 सहरियों ने नसबंदी आपरेशन कराकर परिवार कल्याण को अपनाया।

पीने का पानी

सहरिया बाहुल्य क्षेत्रों में सहरियों के पेयजल की व्यवस्था के लिए विशेष प्रयास किये गये। इस मद में 31 लाख 190 रुपये व्यय किये गये। इसके अंतर्गत 30 पेयजल कुओं का निर्माण, 61 कुओं की मरम्मत, 103 हैण्ड पम्पों की स्थापना की गई तथा 11 नल विस्तार योजनाएं प्रारंभ की गई।

उक्त महत्वपूर्ण विकास कार्यक्रमों के साथ-साथ 888 ग्रामीण गृह निर्माण पूर्ण किये गये। 804 सहरिया बस्तियों में विद्युतीकरण किया गया। सहकारिता के अंतर्गत 10 विक्रय केन्द्रों को अनुदान दिया गया। लैम्पस के हिस्सा पूंजी क्रय अनुदान से 1164 सहरिया परिवारों को लाभान्वित किया गया। सहकारिता कार्यक्रमों पर 2 लाख, ग्रामीण गृह निर्माण पर 7 लाख तथा सड़क एवं पुलिया निर्माण कार्य पर एक लाख रुपये व्यय किया गया। मार्च 1990 में पेयजल, सिंचाई, मुफ्त पोशाक वितरण, छात्रावास एवं प्रशासनिक कार्यों पर लगभग 20 लाख 64 हजार रुपये व्यय किये गये।

भावी कार्यक्रम

सहरिया विकास कार्यक्रम के अंतर्गत वर्ष 1990-91 में 30 लाख रुपये के कार्यों की स्वीकृति प्राप्त हुई है।

वर्तमान में सहरिया अंचलों में पेयजल की गंभीर समस्या को दृष्टिकोण रखते हुए सहरिया परियोजना के माध्यम से 24 गहरे हैण्ड पम्प तथा 10 हैण्ड पम्पों की स्थापना की रूपरेखा तैयार कर क्रियान्विती प्रारंभ कर दी गई है। सहरिया अंचल के ग्राम मूंडियर, मजारी, कालोनी, मामूनी, सेमली तलेटी, रामपुर तलेटी, रातइकलां नारायण खेड़ा, खारदा, पीपलखेड़ी, सिरसोदकलां, महोदरा, होण्डापुरा, आगर, जेतपुरा, माधोपुरा, मुआल, गणेशपुरा, सेगरा, धतुरिया, सेमली फाटक, खेराई, सुखासेमली एवं काली माटी में गहरे हैण्ड पम्प खोदे जा रहे हैं। इनके अलावा कन्डी (सहरिया बस्ती), रामविलास, महोदरी, बालापुरा, केलाखुर्द, अजाहुण्डा, ढिकवानी, धुआं तथा बामनगांव में भी हैण्ड पम्प लगाने की स्वीकृति दी गई है।

चालू वित्तीय वर्ष 1990-91 में 200 कृषि प्रदर्शन लगाने, दो जलोत्थान सिंचाई योजनाएं पूर्ण करने, 50 कृषकों के यहां फल विकास कार्यक्रम लागू करने, दो एनीकट निर्माण, 16 सामुदायिक डीजल पम्प सेट वितरित करने, 2900 बालकों को निशुल्क पोशाकें वितरित करने, 10 हैण्ड पम्प निर्मित करने, दो चिकित्सा शिविरों का आयोजन, 200 ग्रामीण गृह निर्माण तथा 15 सहरिया परिवारों को पुनर्वास सहायता सुलभ कराने के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं।

कोटा जिले के आदिवासी सहरियों में इन कार्यक्रमों से परिवर्तन की झलक स्पष्ट नजर आती है। जैसे-जैसे वे विकास योजनाओं एवं कार्यक्रमों से परिचित हुए हैं उसका लाभ उठाने के प्रति जागरूक भी बने हैं।

जन सम्पर्क अधिकारी
कोटा-324001 (राजस्थान)

सेब

सुनीता

आधुनिक विज्ञान के द्वारा जितनी शक्तिवर्द्धक दवाईयां बनी हैं उन सब में 'फॉसफोरस' की प्रधानता है। स्नायु और मस्तक की सबसे बड़ी खुराक फॉसफोरस है। जगत में जितने फल पाये जाते हैं, उन सब में सेब ही एक ऐसा फल है, जिसमें अत्याधिक मात्रा में 'फॉसफोरस' तत्व होता है। इसलिए सेब नसों और दिमाग की एक बहुमूल्य खुराक है। जिन लोगों को किसी तरह की दिमागी खराबी हो, जैसे स्मरण-शक्ति की कमी, सिर दर्द, चिड़चिड़ापन, बेहोशी, सनक, उन्माद आदि या इसी तरह किसी भी तरह की नसों की कमजोरी हो, तो भोजन से पहले हर बार दो उम्दा सेब खाने चाहिये। यदि किसी को चाय या कॉफी पीने का अभ्यास हो, तो यह जरूर छोड़ देना चाहिये, उनके स्थान पर सेब की चाय बनाकर पीनी चाहिये।

पथरी के रोगियों के लिये सेब अद्भुत शक्तिवान औषधि है। पथरी के रोगियों को सेब खिलाकर आराम दिलाया जाता है। जिगर की खराबी कैसा भयंकर रोग है, इसे भुक्त भोगी ही जान सकते हैं। सेब जिगर की खराबी के लिये अमृत के समान है।

सेब गठिया के रोगियों के लिये भी महौषध है। गठिया का रोग जब बढ़ जाता है तो सेब जैसी वस्तु खिलाना अधिक हितकारी है। उम्दा पका हुआ सेब बिना छीले और बगैर चीनी या नमक की सहायता से खाया जाये तो अमाशय पर उसका अत्यन्त लाभदायक प्रभाव पड़ता है।

किसी की आंखें कमजोर हों, और उनमें से पानी आता हो तो वे एक सेब को कुचलकर उसकी पुल्टिस आंखों पर बांधकर देखें उन्हें आश्चर्यजनक लाभ होता है कि नहीं। अगर किसी के हलक में जख्म हो गये हों और उसे किसी तरह आराम न होता हो, कोई वस्तु निगलना कठिन हो, तो डाल का पका हुआ एक उम्दा सेब लेकर उसका रस निकालें और चांदी के एक चम्मच से धीरे-धीरे उसे मुख में डालें। मुख में डालने पर जितनी देर संभव हो, उसे हलक में रखें, फिर वे पायेंगे कि कितनी जल्दी यह असाध्य रोग छू-मंतर हो गया।

भोजन के साथ नित्य ताजा मक्खन और सेब खाने का नियम कीजिएगा। थोड़े दिनों में ही चेहरा सुर्ख हो जाएगा। ज्वर के रोगी के लिये सेब की चाय या सेब का रस अव्वल नम्बर का पेय पदार्थ है। जो ज्वर की गर्मी, बेचैनी, प्यास, जलन, थकान को तत्काल मिटाता है। सेब पथरी, मसाने के रोग और हृदय की बीमारी में बहुत ही लाभदायक है। यह शक्तिवर्द्धक भी है। एक-दो उम्दा सेब लो, उन्हें धोकर बिना छीले पतले-पतले टुकड़ों में काट लो, उसमें नींबू डालकर उबाल लो, ठंडा होने पर चीनी डालकर पीने से बड़ा लाभ प्राप्त होता है।

सेब का नित्य सेवन करने से नेत्रों में तेज, मस्तिष्क में अथक परिश्रम की शक्ति, नसों में लोहापन आ जायेगा। यदि आप दुबले-पतले, पीले निरुत्साही हैं तो आप सब डाक्टरों, हकीमों का पिंड छोड़कर सेब के मधुर स्वाद में मन लगाइएगा।

द्वारा, श्री ज्ञान चन्द गाबा
मकान नं. 292, रड़ी मौहल्ला,
नीम वाला चौक, लुधियाना (पंजाब)

श्रमिक किसान

मोहन चन्द्र मंटन

जिसके श्रम से शोभा पाकर, धरती रूप संवारती
खेती की हरियाली भाषा में जो गीत गुंजारती,
धरती का वह पूत कृषक है जीता श्रम की शान से
उसको अपनी मिट्टी प्यारी, मिट्टी जिसे पुकारती
उसको है खेतों से नाता, सुबह वहीं तो शाम वहीं
दिन भर खेती में रम जाता, पल भी आराम नहीं
सहता ठंड भरी ठिठुरन को, दहता गर्म हवाओं में
वर्षा उसे भिगोती लेकिन रुकता उसका काम नहीं
है किसान गांवों का गौरव, उपजाता जो अन्न रहा
सारा देश उसी पर निर्भर होता जो संपन्न रहा
स्वयं त्याग की मूरत, सहता जो भी दुखद अभाव है
फिर भी रोता कभी न कहता, कितना दुखी विपन्न रहा
धन्य देश के कृषक-बन्धु को जिसका त्याग महान है
धरती के कण-कण में जिसका छिपा हुआ बलिदान है
बोकर बीज फले खेतों में हरियाला परिधान है
यह किसान का योगदान श्रमदान कहो कल्याण है।

ए बी 820, सरोजिनी नगर
नई दिल्ली-110023

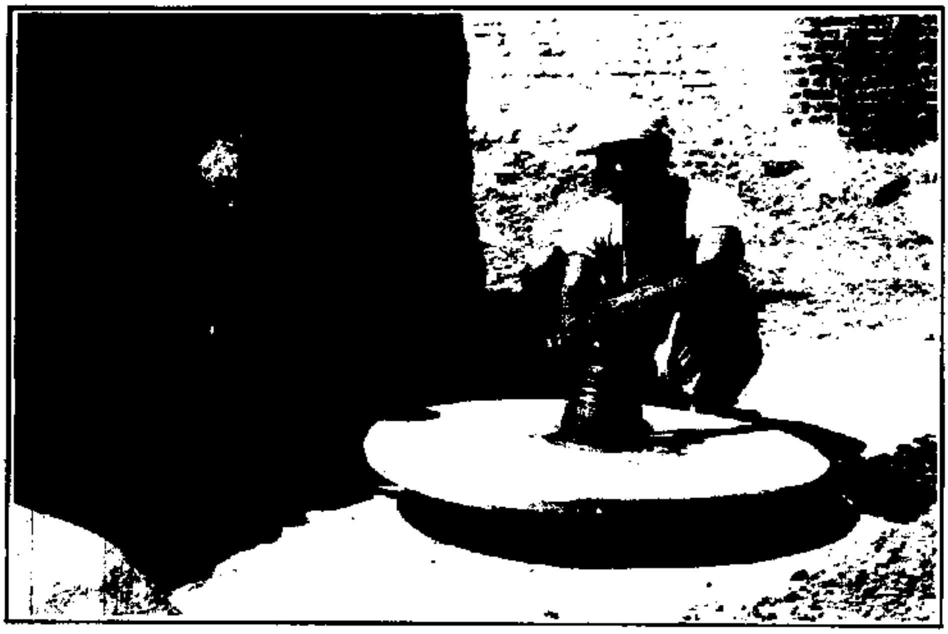

ग्रामीण बैंक गांवों के कारीगरों और छोटे उद्यमियों को ऋण के रूप में सहायता उपलब्ध कराते हैं। इससे बढ़ईगिरी, लुहारगिरी, चमड़े का सामान बनाने, अनाज संसाधन, हस्तशिल्प जैसे कई उद्योग-धंधों को बढ़ावा मिलता है।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक मे डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुर शाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित